वीर ज्ञानोदय ग्रन्थमाला का पुष्प नं. 26
ISBN 978-93-80353-93-7

प्रतिज्ञा

(सती मनोवती की दर्शन कथा)

–: लेखिका : –

गणिनीप्रमुख आर्यिकाशिरोमणि श्री ज्ञानमती माताजी

शरदपूर्णिमा महोत्सव, 11 अक्टूबर 2011 को जम्बूद्वीप-हस्तिनापुर में पूज्य गणिनीप्रमुख श्री ज्ञानमती माताजी द्वारा घोषित ''प्रथम पट्टाचार्य श्री वीरसागर वर्ष'' के अन्तर्गत पूज्य आर्यिका श्री रत्नमती माताजी की 27वीं पुण्यतिथि- माघ कृ. नवमी, 17 जनवरी 2012 के अवसर पर प्रकाशित

-प्रकाशक-

दिगम्बर जैन त्रिलोक शोध संस्थान

जम्बूद्वीप-हस्तिनापुर (मेरठ) उ.प्र.-250404,

फोन नं.- (01233) 280184, 280994

Website : www.jambudweep.org E-mail : jambudweeptirth@gmail.com

सप्तम संस्करण	वीर नि. सं. 2538, माघ कृ. 14	मूल्य
2200 प्रतियाँ	22 जनवरी 2012	24/-रु.

दिगम्बर जैन त्रिलोक शोध संस्थान द्वारा संचालित

वीर ज्ञानोदय ग्रन्थमाला

इस ग्रन्थमाला में दिगम्बर जैन आर्षमार्ग का पोषण करने वाले हिन्दी, संस्कृत, प्राकृत, कन्नड़, अंग्रेजी, गुजराती, मराठी आदि भाषाओं के न्याय, सिद्धान्त, अध्यात्म, भूगोल-खगोल, व्याकरण आदि विषयों पर लघु एवं वृहद् ग्रंथों का मूल एवं अनुवाद सहित प्रकाशन होता है। समय-समय पर धार्मिक लोकोपयोगी लघु पुस्तिकाएं भी प्रकाशित होती रहती हैं।

-: संस्थापिका एवं प्रेरणास्रोत :-

गणिनीप्रमुख आर्यिकाशिरोमणि श्री ज्ञानमती माताजी

-: मार्गदर्शन :-

प्रज्ञाश्रमणी आर्यिका श्री चन्दनामती माताजी

-: निर्देशन एवं सम्पादक :-

स्वस्तिश्री कर्मयोगी पीठाधीश रवीन्द्रकीर्ति स्वामी जी

-: प्रबंध सम्पादक :-

जीवन प्रकाश जैन

———सर्वाधिकार प्रकाशकाधीन———

प्रथम से पंचम संस्करण तक 12000 प्रतियाँ प्रकाशित हो चुकी हैं।
षष्ठ संस्करण-सन् 2006, प्रतियाँ-2200 प्रतियाँ

कम्पोजिंग – ज्ञानमती नेटवर्क, जम्बूद्वीप-हस्तिनापुर (मेरठ) उ.प्र.

मुद्रक-स्वस्तिक प्रिन्टर्स एण्ड पब्लिसर्स, दिल्ली, मो.-08800274437

प्रकाशकीय

-स्वस्तिश्री कर्मयोगी पीठाधीश
रवीन्द्रकीर्ति स्वामी

साहित्य समाज का दर्पण है। व्यक्ति गतिशील है और नई खोज में विश्वास करता है। बड़े-बड़े पुराण ग्रंथों को पढ़ने का आज किसी को समय है नहीं, इसीलिए उन पुराण ग्रंथों के कथानकों को गागर में सागर के समान इस छोटी सी पुस्तक में समाहित किया गया है। आज की नई पीढ़ी विशेषकर नये-नये आकर्षक साहित्य को पढ़ने में रुचिवान होती है। यह कृति उसी का एक रूप है। प्राचीन कथानक और आधुनिक परिवेश यह उसकी विशेषता है।

वैसे तो पूज्य माताजी अष्टसहस्री, नियमसार, षट्खण्डागम जैसे उच्च कोटि के ग्रंथों का अनुवाद करने में अपना अमूल्य समय व्यतीत करती हैं फिर भी हम लोगों के विशेष आग्रह के कारण ही इस प्रकार के रोचक कथानकों को पूज्य माताजी ने लिखकर दिया, यह उनका बड़ा ही उपकार है।

आशा है पाठकगण इस छोटे से कथानक को पढ़कर जीवन निर्माण में इससे कुछ शिक्षा ग्रहण करेंगे, यही इसकी सार्थकता होगी।

प्रस्तावना

-आर्यिका चन्दनामती

प्रस्तुत पुस्तिका जो आपके हाथों में है-प्रतिज्ञा। नाम से ही ऐसा आभास होता है कि अवश्य ही इस पुस्तक में किसी महापुरुष की दृढ़ प्रतिज्ञा का रोमांचक वर्णन होगा। प्राचीनकाल से यह जैनधर्म मानवजीवन में अपने सिद्धान्तों को नियमरूप से पालन करने वाला कहा गया है। समय-समय पर अकलंक और निकलंक जैसे दो प्रिय भाईयों ने अपने प्राणों की बलि देकर भी जैनधर्म का प्रचार-प्रसार किया है। इस प्रकार से देश के महापुरुषों ने तो धर्म के लिए बलिदान दिया है किन्तु हमारे देश की नारियाँ भी पुरुषों से पीछे नहीं रही हैं। धर्म-कर्म में सामाजिक तथा राजनैतिक कार्यों में स्त्रियाँ भी सदैव पुरुष के आगे रही हैं। स्वभाव की अत्यधिक चंचलता होने पर भी स्त्रियाँ व्रत, उपवास, नियम आदि को अत्यन्त दृढ़ता से पालन करती हैं। रामचन्द्र जी की वल्लभा सीता जी ने अपने शील की दृढ़ता पर ही तो अग्नि में कूदकर परीक्षा दी थी और सोमासती ने अपनी प्रतिज्ञा पर ही महाभयंकर विषधर को फूल की माला बना दिया था। उसी प्रकार इस पुस्तक में भी कन्या मनोवती के देवदर्शन की प्रतिज्ञा का महत्व बतलाया गया है। उसने बाल्यावस्था में लिए हुए नियम को यावज्जीवन पालन

करके देवों के आसन कँपा दिये। अंत में देवों ने आकर उसकी रक्षा करके घनघोर जंगल में भी उसकी प्रतिज्ञा का पालन करवाया।

इस पुस्तिका को साकार रूप देने वाली हैं पूज्य आर्यिकारत्न श्री ज्ञानमती माताजी। साहित्य समाज में प्रवेश करके पूज्य माताजी ने छोटे बच्चों से लेकर वृद्धों के लिए, अल्पज्ञानी से लेकर महान् विद्वानों के लिए उपयोगी समस्त ग्रंथों की रचना की है। जहाँ न्याय और सिद्धांतवेत्ताओं के लिए अष्टसहस्री का हिन्दी अनुवाद कर मार्गदर्शन दिया, वहीं साधारण लोगों के समझने के लिए 'न्यायसार' की रचना कर गागर में सागर भर दिया है तथा बच्चों का उपकार करना भी माताजी भूलीं नहीं और नये ढंग से बालसामग्री को संजोकर 'बालविकास' के नाम से चार भाग तैयार किये और वे ही प्रकाशित होकर कई जगह के परीक्षा बोर्डों से मान्यता प्राप्त कर चुके हैं। इस प्रकार की रचना तथा दीर्घकालीन दीक्षित जीवन में बहुत से ग्रंथों की रचना तथा अनुवाद आदि कार्य किया। आपने श्रवणबेलगोला के चातुर्मास में भगवान बाहुबलि के चरणों का ध्यान करते हुए 'बाहुबलि चरित्र' नाम से अत्यन्त लोकप्रिय रचना बनाई तथा संस्कृत में 'बाहुबलि स्तोत्र' की रचना की। सन् १९७६ के चातुर्मास में एक बहुत बड़ा कार्य हुआ इन्द्रध्वज विधान की हिन्दी पूजाओं के निर्माण का, अभी तक यह इन्द्रध्वज विधान की संस्कृत में हस्तलिखित प्रतियाँ देशभर में केवल ७-८ प्रतियाँ थीं। उसी को आधार बनाकर पूज्य माताजी ने अहर्निश परिश्रम करके

उसे हिन्दी में बनाया जो कि बहुत भावपूर्ण है और प्रकाशित होकर जन-जन के हाथों में पहुँच चुका है। गुरुभक्ति से प्रेरित होकर आपने आचार्य शान्तिसागर से लेकर आचार्य धर्मसागर तथा और भी अन्य कई आचार्यों की स्तुतियाँ बनाई हैं। आपके द्वारा लिखित लगभग २५० ग्रंथ प्रकाशित हो चुके हैं तथा अभी भी समय-समय पर प्रकाशित हो रहे हैं। समस्त ग्रंथ रचना के साथ-साथ ही आपका ध्यान आज की युवा पीढ़ी पर भी केन्द्रित हुआ और उनके योग्य सामग्री भी बनाई जिसमें यह पुस्तिका भी सम्मिलित है। इसको पढ़ कर आपके मन में भी किसी प्रकार के नियम लेने की अवश्य भावना जागृत होगी। आज हम मनोवती के समान गजमोतियों को चढ़ाकर दर्शन नहीं कर सकते तो मात्र चावल आदि सामग्री से भगवान का दर्शन-पूजन करके असीमित पुण्यबंध तो कर ही सकते हैं क्योंकि भावना तो संसार का भी नाश करने में समर्थ है।

पूज्य माताजी की यह प्रतिज्ञाशक्ति किन्हीं पूर्व संस्कारों की देन है जिन्होंने विद्यालय की केवल ३-४ क्लास की शिक्षा प्राप्त करके आज पी.एच.डी. और डी.लिट्. के परीक्षार्थियों के मार्गदर्शन के लिए भी सामग्री दी है। कौन जानता था कि टिकैतनगर ग्राम में उत्पन्न हुआ यह छोटा सा दीप सारे विश्व को आलोकित करेगा? क्योंकि आपका शारीरिक स्वास्थ्य प्रारंभ से ही कमजोर था फिर भी १८ वर्ष की अल्पायु में ही आपने त्यागमार्ग की ओर अपने कदम बढ़ाये और आज आपकी उस त्याग तथा तपस्या का ही

प्रभाव है कि आपकी प्रेरणा से कई एक पुरुष जैनेश्वरी दीक्षा ग्रहण कर नररत्न बन गए और कितनी ही कुमारी, सौभाग्यवती तथा विधवाओं को त्यागमार्ग में प्रवृत्त करके उन को संसार समुद्र से निकाला। जगत् का उपकार करने वाली माँ अपने परिवार का भी उपकार करना नहीं भूलीं।

इस जीवन में आपने साहित्य रचना का तो अपूर्व कार्य किया ही है इसके साथ ही साथ आपकी प्रेरणा से हस्तिनापुर में जो जंबूद्वीप की रचना का निर्माण हुआ है वह रचना आपके जीवन की एक अभूतपूर्व देन है। इसके साथ ही भगवान ऋषभदेव की दीक्षा एवं केवलज्ञान कल्याणक भूमि प्रयाग में 'दीक्षा तीर्थ' का निर्माण, भगवान महावीर की जन्मभूमि कुण्डलपुर में 'नंद्यावर्त महल तीर्थ' का निर्माण आदि अनेक अलौकिक कार्य हैं तथा मांगीतुंगी-महाराष्ट्र में पर्वत की अखण्ड शिला में १०८ फुट ऊँची प्रतिमा के निर्माण की प्रेरणा भी आपकी ही चिन्तनशक्ति का प्रतिफल है।

इस प्रकार से आपने अपनी विविध रचनाओं के द्वारा विश्व के ऊपर अनन्य उपकार किया है और आगे भी हम जिनेन्द्र भगवान से यही प्रार्थना करते हैं कि आप चिरायु होकर हम अज्ञानियों का पथ प्रदर्शन करती रहें।

जैन समाज की सर्वोच्च साध्वी, गणिनीप्रमुख, आर्यिकाशिरोमणि

श्री ज्ञानमती माताजी का संक्षिप्त-परिचय

-प्रज्ञाश्रमणी आर्यिका चन्दनामती

जन्मस्थान—टिकैतनगर (बाराबंकी) उ.प्र.

जन्मतिथि—आसोज सुदी १५ (शरदपूर्णिमा) वि. सं. १९९१, (२२ अक्टूबर सन् १९३४)

जाति—अग्रवाल दि. जैन, **गोत्र**—गोयल, **नाम**—कु. मैना

माता-पिता—श्रीमती मोहिनी देवी एवं श्री छोटेलाल जैन

आजन्म ब्रह्मचर्य व्रत—ई. सन् १९५२ में बाराबंकी में शरदपूर्णिमा के दिन

क्षुल्लिका दीक्षा—चैत्र कृ. १, ई. सन् १९५३ को महावीरजी अतिशय क्षेत्र (राज.) में आचार्यरत्न श्री देशभूषण जी महाराज से। नाम—क्षुल्लिका वीरमती

आर्यिका दीक्षा—वैशाख कृ. २, ई. सन् १९५६ को माधोराजपुरा (राज.) में चारित्रचक्रवर्ती १०८ आचार्य श्री शांतिसागर जी की परम्परा के प्रथम पट्टाधीश आचार्य श्री वीरसागर जी महाराज के करकमलों से।

साहित्यिक कृतित्व—अष्टसहस्री, समयसार, नियमसार, मूलाचार, कातंत्र-व्याकरण, षट्खण्डागम आदि ग्रंथों के अनुवाद/टीकाएं एवं २५० विशिष्ट ग्रंथों की लेखिका। सन् १९९५ में अवध वि.वि. (फैजाबाद) द्वारा "डी.लिट्." की मानद उपाधि से विभूषित।

तीर्थ निर्माण प्रेरणा—हस्तिनापुर में जंबूद्वीप तेरहद्वीप, तीनलोक आदि रचनाओं के निर्माण, शाश्वत तीर्थ अयोध्या का विकास एवं जीर्णोद्धार, प्रयाग-इलाहाबाद (उ.प्र.) में तीर्थंकर ऋषभदेव तपस्थली तीर्थ का निर्माण,

तीर्थंकर जन्मभूमियों का विकास यथा— भगवान महावीर जन्मभूमि कुण्डलपुर (नालंदा-बिहार) में 'नंद्यावर्त महल' नामक तीर्थ निर्माण, भगवान पुष्पदंतनाथ की जन्मभूमि काकन्दी तीर्थ (निकट गोरखपुर-उ.प्र.) का विकास, भगवान पार्श्वनाथ केवलज्ञानभूमि अहिच्छत्र तीर्थ पर तीस चौबीसी मंदिर, हस्तिनापुर में जम्बूद्वीप स्थल पर भगवान शांतिनाथ-कुंथुनाथ-अरहनाथ की ३१-३१ फुट उत्तुंग खड्गासन प्रतिमा, मांगीतुंगी में निर्माणाधीन १०८ फुट उत्तुंग भगवान ऋषभदेव की विशाल प्रतिमा इत्यादि।

महोत्सव प्रेरणा— पंचवर्षीय जम्बूद्वीप महामहोत्सव, भगवान ऋषभदेव अंतर्राष्ट्रीय निर्वाण महामहोत्सव, अयोध्या में भगवान ऋषभदेव महाकुंभ मस्तकाभिषेक, कुण्डलपुर महोत्सव, भगवान पार्श्वनाथ जन्मकल्याणक तृतीय सहस्राब्दि महोत्सव, दिल्ली में कल्पद्रुम महामण्डल विधान का ऐतिहासिक आयोजन इत्यादि। **विशेषरूप से २१ दिसम्बर २००८ को जम्बूद्वीप स्थल पर विश्वशांति अहिंसा सम्मेलन का आयोजन हुआ, जिसका उद्घाटन भारत की राष्ट्रपति श्रीमती प्रतिभा देवीसिंह पाटील द्वारा किया गया।**

शैक्षणिक प्रेरणा— 'जैन गणित और त्रिलोक विज्ञान' पर अंतर्राष्ट्रीय संगोष्ठी, राष्ट्रीय कुलपति सम्मेलन, इतिहासकार सम्मेलन, न्यायाधीश सम्मेलन एवं अन्य अनेक राष्ट्रीय-अंतर्राष्ट्रीय स्तर के सेमिनार आदि।

रथ प्रवर्तन प्रेरणा— जम्बूद्वीप ज्ञानज्योति (१९८२ से १९८५), समवसरण श्रीविहार (१९९८ से २००२), महावीर ज्योति (२००३-२००४) का भारत भ्रमण।

इस प्रकार नित्य नूतन भावनाओं की जननी पूज्य माताजी चिरकाल तक इस वसुधा को सुशोभित करती रहें, यही मंगल कामना है।

दिगम्बर जैन त्रिलोक शोध संस्थान का परिचय

जिस हस्तिनापुर में इस संस्थान द्वारा राष्ट्रीय स्तर पर कार्य कलाप चल रहे हैं, प्रथम तीर्थंकर भगवान ऋषभदेव की पारणा, कौरव-पाण्डव की राजधानी, दर्शन प्रतिज्ञा में प्रसिद्ध मनोवती का इतिहास आदि पौराणिक कथानकों से जुड़ी वह हस्तिनापुर नगरी एक ऐतिहासिक एवं पौराणिक नगरी है। सन् १९७२ में पूज्य गणिनीप्रमुख श्री ज्ञानमती माताजी की प्रेरणा से दिगम्बर जैन त्रिलोक शोध संस्थान के नाम से दिल्ली में इस संस्था का जन्म हुआ।

सन् १९७४ से हस्तिनापुर में निर्माण कार्य प्रारंभ किया गया और अब तक वहाँ अनेक भव्य रचनाएं, मंदिर, कमरे, फ्लैट, कोठियां, भोजनालय, टंकी आदि बन चुके हैं। निर्माण के अतिरिक्त संस्थान के द्वारा शिक्षा एवं धर्म प्रचार-प्रसार हेतु शिक्षण शिविर, सेमिनार, अंतर्राष्ट्रीय सेमिनार, सम्मेलन आदि के आयोजन भी होते रहते हैं। पूज्य माताजी एवं आर्यिका श्री चंदनामती माताजी द्वारा लिखित चारों अनुयोगों एवं धर्मप्रभावना के समाचारों से सहित सम्यग्ज्ञान मासिक पत्रिका का प्रकाशन सन् १९७४ से बराबर निर्बाध गति से चल रहा है। संस्थान के अंतर्गत ही सन् १९७२ में स्थापित वीर ज्ञानोदय ग्रंथमाला से ३०० से भी अधिक ग्रंथ लाखों की संख्या में प्रकाशित हो चुके हैं। यहां जम्बूद्वीप पुस्तकालय, णमोकार महामंत्र बैंक, गणिनी ज्ञानमती शोधपीठ आदि के द्वारा धार्मिक शैक्षणिक एवं पारमार्थिक कार्यक्रम चलते रहते हैं। सन् १९७५ से प्रारंभ पंचकल्याणकों में अब तक अनेक पंचकल्याणक प्रतिष्ठाएं एवं प्रति ५ वर्षों में होने वाले जम्बूद्वीप महामहोत्सव में से ५ महोत्सव हो चुके हैं। इस संस्थान द्वारा जहाँ पूज्य माताजी की प्रेरणा से सन् १९८२ में दिल्ली से स्व. प्रधानमंत्री श्रीमती इंदिरा गांधी द्वारा उद्घाटित जम्बूद्वीप ज्ञानज्योति रथ का १०४५ दिनों तक सम्पूर्ण भारत में भ्रमण एवं हस्तिनापुर में उसकी अखण्ड स्थापना हुई, सन् १९९८ में प्रधानमंत्री श्री अटल बिहारी वाजपेयी द्वारा उद्घाटित

भगवान ऋषभदेव समवसरण श्रीविहार द्वारा अहिंसामयी सिद्धान्तों का प्रचार-प्रसार हुआ। वहीं भगवान महावीर जन्मभूमि कुण्डलपुर (नालंदा) से सन् २००३ में महामहिम राज्यपाल बिहार प्रान्त द्वारा प्रवर्तित "भगवान महावीर ज्योति" रथ के भारत भ्रमण से जनमानस भगवान महावीर के विषय में आगमसम्मत ज्ञान से परिचित हुआ है। जम्बूद्वीप स्थल पर समय-समय पर भव्य दीक्षाएं भी सम्पन्न हुई हैं। इसी संस्थान द्वारा दिल्ली के लालकिला मैदान में ४ फरवरी सन् २००० को प्रधानमंत्री श्री वाजपेयी द्वारा उद्घाटित "भगवान ऋषभदेव अंतर्राष्ट्रीय निर्वाण महामहोत्सव" सम्पूर्ण देश एवं विदेशों में मनाया गया। जिसके अंतर्गत अनेक संगोष्ठियाँ, भगवान ऋषभदेव कीर्तिस्तंभ निर्माण आदि कार्यक्रम हुए। सन् २०००-२००१ में संस्थान द्वारा पूज्य माताजी की प्रेरणा से भगवान ऋषभदेव की दीक्षा एवं केवलज्ञान भूमि प्रयाग-इलाहाबाद में बनारस हाइवे पर "तीर्थंकर ऋषभदेव तपस्थली तीर्थ" का नवनिर्माण हुआ है तथा ६ अप्रैल सन् २००१ को ही प्रधानमंत्री अटल बिहारी वाजपेयी द्वारा उद्घाटित राष्ट्रीय स्तर पर सम्पूर्ण भारतवर्ष में मनाए जाने वाले भगवान महावीर २६००वाँ जन्मकल्याणक महोत्सव वर्ष में पूज्य माताजी द्वारा रचित "विश्वशांति महावीर विधान" का विराट आयोजन प्रथम राष्ट्रीय आयोजन के रूप में राजधानी दिल्ली के फिरोजशाह कोटला मैदान में अक्टूबर २००१ में सम्पन्न हुआ। उसी जन्मकल्याणक महोत्सव के अंतर्गत सन् २००३-२००४ में संस्थान द्वारा पूज्य माताजी की प्रेरणा से भगवान महावीर की जन्मभूमि कुण्डलपुर का विकास कार्य द्रुतगति से हुआ है। "नंद्यावर्त महल" नामक तीर्थ परिसर वहाँ का विशेष दर्शनीय स्थल पर्यटकों के लिए आकर्षण का केन्द्र है।

कुण्डलपुर विकास संपन्न होने के पहले ही पूज्य गणिनीप्रमुख श्री ज्ञानमती माताजी ने आगामी वर्ष २००५ को "भगवान पार्श्वनाथ जन्मकल्याणक तृतीय सहस्राब्दि महोत्सव वर्ष" के रूप में मनाने का सारे देश को प्रेरणा दी और पूज्य माताजी के सानिध्य में बनारस में भगवान पार्श्वनाथ की जन्मजयंती ६ जनवरी २००५ को इस पार्श्वनाथ महोत्सव वर्ष का जोर-शोर के साथ सारे

देश की जनता के बीच उत्तरप्रदेश के लोक निर्माण मंत्री-श्री शिवपाल सिंह यादव एवं अन्य अतिथियों द्वारा उद्घाटन किया गया। सारे देश में ३ वर्ष तक भगवान पार्श्वनाथ तृतीय सहस्राब्दि महोत्सव विविध आयोजनों के साथ मनाया गया, जिसका समापन भगवान पार्श्वनाथ की केवलज्ञान भूमि अहिच्छत्र तीर्थ पर तिखाल वाले बाबा के महामस्तकाभिषेकपूर्वक ४ जनवरी २००८ को हुआ।

२१ दिसम्बर २००८ का दिवस संस्थान के लिए विशेष गौरवपूर्ण एवं ऐतिहासिक रहा, जब गणतंत्र भारत की महामहिम राष्ट्रपति श्रीमती प्रतिभा देवीसिंह पाटिल पूज्य गणिनीप्रमुख श्री ज्ञानमती माताजी का शुभाशीर्वाद लेने जम्बूद्वीप-हस्तिनापुर पधारीं और विश्वशाति अहिंसा सम्मेलन का उद्घाटन किया।

इस संस्थान के द्वारा संचालित किये जा रहे हस्तिनापुर तीर्थ पर जम्बूद्वीप रचना के विशाल परिसर में तेरहद्वीप रचना, तीनलोक रचना आदि की अभूतपूर्व कृतियाँ सारे देश के लिए प्रथम बार जैन भूगोल और खगोल का परिज्ञान करा रही हैं। अनेक प्रकार के शैक्षणिक कार्यकलापों के साथ-साथ यहाँ से कई विशिष्ट पुरस्कार भी प्रतिवर्ष विशिष्ट विद्वानों, सामाजिक कार्यकर्ताओं, आदर्श नारियों एवं प्रतिभाशाली बालक-बालिकाओं को प्रदान किये जाते हैं।

वर्तमान में संस्थान ने पूज्य माताजी की पावन प्रेरणा से "प्रथमाचार्य शांतिसागर वर्ष" (२०१०-२०११) सफलतापूर्वक मनाया गया, जिसमें पूरे देश की दिगम्बर जैन समाज ने बढ़-चढ़कर विभिन्न आयोजनों के द्वारा गुरुभक्ति का परिचय प्रदान किया।

इस प्रकार आप सबके सहयोग से संचालित हो रहा दिगम्बर जैन त्रिलोक शोध संस्थान अपनी चतुर्मुखी योजनाओं से समाज को सदैव लाभान्वित करता रहे यही मंगल कामना है।

वीर ज्ञानोदय ग्रन्थमाला के सहयोगी

दिगम्बर जैन त्रिलोक शोध संस्थान के अन्तर्गत "वीर ज्ञानोदय ग्रन्थमाला" की स्थापना सन् 1974 में हुई। तब से अब तक लाखों की संख्या में ग्रन्थों का प्रकाशन हो चुका है और निरन्तर हो रहा है। ग्रंथमाला से पाठकों को ग्रन्थ कम कीमत में प्राप्त हो सकें, इस दृष्टि से ग्रन्थमाला में एक संरक्षक योजना अगस्त सन् 1990 से प्रारंभ की गई है। इस योजना के अन्तर्गत निम्न महानुभाव अब तक संरक्षक बनकर अपना सहयोग प्रदान कर चुके हैं।

शिरोमणि संरक्षक

१. श्रीमती निर्मला जैन ध.प. श्री प्रेमचन्द्र जैन, तत्पुत्र प्रदीप कुमार जैन, खीरावली, दिल्ली।
२. श्रीमती सुमन जैन ध.प. श्री दिग्विजय सिंह जैन, इंदौर।
३. श्री महावीर प्रसाद जैन संघपति, साऊथ एक्सटेन्शन, नई दिल्ली।
४. श्री महेन्द्र पाल हरेन्द्र कुमार जैन, सूरजमल विहार, दिल्ली।
५. श्रीमती मोहनी जैन ध.प. श्री सुनील जैन, प्रीत विहार, दिल्ली।
६. श्री देवेन्द्र कुमार जैन (धारूहेड़ा वाले) गुड़गाँव (हरि.)।
७. श्रीमती शारदा रानी जैन ध.प. स्व. रिखबचंद जैन, बाहुबली एन्क्लेव, दिल्ली-९२
८. डॉ. देवेन्द्र कुमार जैन, भोपाल (म.प्र.)
९. श्रीमती संगीता जैन ध.प. श्री संजीव कुमार जैन, शेरकोट (बिजनौर) उ.प्र.
१०. श्री अनिल कुमार जैन, दरियागंज, दिल्ली
११. श्री बी.डी. मदनाइक, मुम्बई
१२. श्री धनकुमार जैन, बाहुबली एन्क्लेव, दिल्ली
१३. श्री जितेन्द्र कुमार जैन एवं श्रीमती सुनीता जैन कोटड़िया, फ्लोरिडा, यूएस.ए.
१४. श्रीमती विमला देवी जैन ध.प. श्री ओमप्रकाश जैन, स्वालिक नगर, हरिद्वार(उत्तराखंड)।
१५. श्री अमित जैन एवं संभव जैन सुपुत्र श्रीमती अनीता जैन ध.प. श्री मूलचंद जैन पाटनी, दिसपुर (कामरूप) आसाम।
१६. श्रीमती अजित कुमारी जैन ध.प. श्री महेन्द्र कुमार जैन, ओबेदुल्लागंज (रायसेन)म.प्र.।
१७. श्री नाभिकुमार जैन, जैन बुक डिपो, सी-४, पी.वी.आर. प्लाजा के पीछे, कनॉट प्लेस, नई दिल्ली।

परम संरक्षक

१. श्री माँगीलाल बाबूलाल जैन पहाड़े, हैदराबाद (आन्ध्र प्रदेश)।
२. डॉ. प्रकाशचन्द्र जैन, ७९२ विवेकानंदपुरी, सिविल लाइन, सीतापुर (उ.प्र.)।
३. श्री सुमत प्रकाश जैन, गज्जू कटरा, शाहदरा, दिल्ली।
४. श्री सुनील कुमार जैन, द्वारा-सुनील टैक्सटाईल्स, सरधना (मेरठ) उ.प्र.।
५. श्री प्रकाश चंद अमोलक चंद जैन सर्राफ, सनावद (म.प्र.)।
६. श्री प्रद्युम्न कुमार जवेरी, रोकड़ियालेन, बोरीवली (वेस्ट) मुंबई।
७. श्रीमती उर्मिला देवी ध.प. श्री कान्ती प्रसाद जैन, ऋषभ विहार, दिल्ली।
८. श्रीमती उषा जैन ध.प. श्री विमल प्रसाद जैन, ऋषभ विहार, दिल्ली।
९. श्री आनन्द प्रकाश जैन (सौरम वाले), गांधीनगर, दिल्ली।
१०. श्रीमती सरिता जैन ध.प. श्री राजकुमार जैन, किदवई नगर, कानपुर।
११. स्व. श्रीमती कैलाशवती ध.प. श्री कैलाश चन्द्र जैन , तोपखाना बाजार, मेरठ।
१२. श्री भानेन्द्र कुमार जैन, द्वारा-श्री विद्या जैन, भगत सिंह मार्ग, जयपुर।
१३. श्री प्रदीप कुमार शान्तिलाल बिलाला, अनूपनगर, इंदौर (म.प्र.)।
१४. श्री सुरेशचंद पवन कुमार जैन, बाराबंकी (उ.प्र.)।
१५. श्री नथमल पारसमल जैन, कलकत्ता-७।
१६. श्रीमती स्व. शांताबाई ध.प. श्री कमलचंद जैन, सनावद (म.प्र.)।
१७. श्री रूपचंद जैन कटारिया, दिल्ली
१८. श्री आशु जैन, कालका जी, नई दिल्ली

संरक्षक

१. स्व. श्री अनन्तवीर्य जैन एवं स्व. श्रीमती आदर्श जैन के सुपुत्र श्री मनोज कुमार जैन, मेरठ।
२. श्रीमती राजूबाई मातेश्वरी श्री शिखर चन्द भाई देवेन्द्र कुमार लखमी चन्द जैन, सनावद (म.प्र.)।
३. श्री चिमनलाल चुन्नीलाल दोशी, कीका स्ट्रीट, मुम्बई।
४. श्रीमती अरुणाबेन मन्नूभाई कोटड़िया, सी.पी. टैंक रोड, मुम्बई।
५. श्रीमती ताराबेन चन्दूलाल दोशी, फ्रेन्च ब्रिज, मुम्बई।
६. श्री रतिलाल चुन्नीलाल दोशी, मुम्बई।
७. स्व. श्रीमती मथुराबाई खुशाल चन्द्र जैन, द्वारा-श्री रतन चन्द खुशाल चन्द गाँधी के सुपुत्र श्री धन्य कुमार, अशोक कुमार, शिरीश कुमार, धर्मराज गाँधी फलटन (महा.)।
८. श्री शांतिलाल खुशाल चन्द गाँधी, फलटन (सातारा) महा.।
९. श्री अनन्त लाल फूलचन्द फड़े, अकलूज (सोलापुर) महा.।
१०. श्री हीरालाल माणिकलाल गाँधी, अकलूज (सोलापुर) महा.।
११. श्री जयकुमार खुशालचंद गाँधी, अकलूज (सोलापुर) महा.।

१२. श्रीमती बदामी देवी मातेश्वरी श्री पदम कुमार जैन गंगवाल, कानपुर (उ.प्र.)।
१३. श्रीमती कमलादेवी ध.प. स्व. श्री महेन्द्र कुमार जैन, घण्टे वाले हलवाई, दरियागंज, नई दिल्ली।
१४. श्रीमती उषादेवी ध.प. श्री श्रवण कुमार जैन, चावड़ी बाजार, दिल्ली।
१५. श्री मुकेश कुमार जैन, कटरा शहंशाही, चाँदनी चौक, दिल्ली।
१६. श्री हुकमीचंद मांगीलाल शाह, धानमंडी, उदयपुर (राज.)
१७. श्री किरण चन्द्र जैन, कटरा धूलियान, चाँदनी चौक, दिल्ली।
१८. श्रीमती विमलादेवी ध.प. श्री महावीर प्रसाद जैन इंजी. विवेक विहार, दिल्ली
१९. श्रीमती उषादेवी ध.प. श्री अशोक कुमार जैन (खेकड़ा निवासी), बहराइच (उ.प्र.)।
२०. श्रीमती लीलावती ध.प. श्री हरीश चन्द्र जैन, शकरपुर, दिल्ली।
२१. श्री दुलीचन्द जैन, बाहुबली एन्कलेव, दिल्ली।
२२. श्री रतिलाल केवलचन्द गाँधी की पुण्य स्मृति में, पापुलर परिवार, सूरत (गुज.)।
२३. श्रीमती भंवरीदेवी ध.प. श्री सदासुख जैन पांड्या की समृति में इन्दर चन्द सुमेरमल जैन पांड्या शिलांग (मेघालय)।
२४. श्रीमती सोहनीदेवी ध.प. श्री तनसुखराय सेठी, फैन्सी बाजार, गौहाटी (आसाम)।
२५. श्रीमती धापूबाई ध.प. श्री कस्तूर चन्द जैन, रामगंज मण्डी (राज.)।
२६. श्री मिट्ठनलाल चन्द्रभान जैन, कविनगर गाजियाबाद (उ.प्र.)।
२७. श्रीमती शकुन्तलादेवी ध.प. श्री सुरेशचंद जैन (बर्तन वाले), खुड़बुड़ा मोहल्ला देहरादून (उ.प्र.)।
२८. श्री देवेन्द्र कुमार गुणवन्त कुमार टोंग्या, बड़नगर (म.प्र.)।
२९. श्री दिगम्बर जैन समाज, तहसील फतेहपुर (बाराबंकी) उ.प्र.।
३०. श्री मन्नालाल रामलाल जैन डूंगरवाला, भानपुरा (मन्दसौर) म.प्र.।
३१. श्री इन्दर चन्द कैलाश चंद चौधरी, सनावद (म.प्र.)।
३२. श्री प्रकाश चन्द अमोलक चन्द जैन सर्राफ, सनावद (म.प्र.)।
३३. स्व. श्री विमल चन्द जैन, रखबचन्द दसरथ सा, सनावद (म.प्र.)।
३४. श्री आजाद कुमार जैन शाह (सनावद वाले), इन्दौर (म.प्र.)।
३५. श्रीमती सुषमा देवी ध.प. श्री राकेश कुमार जैन, मवाना (मेरठ) उ.प्र.।
३६. श्रीमती कुसुम जैन ध.प. श्री रमेशचन्द जैन, किशनपुरी, बागपत रोड, मेरठ।
३७. श्रीमती किरण जैन ध.प. श्री पदम प्रसाद जैन एडवोकेट, मेरठ (उ.प्र.)।
३८. श्रीमती विमलादेवी ध.प. श्री जिनेन्द्रप्रसाद जैन ठेकेदार, टोडरमल रोड, नई दिल्ली।
३९. श्रीमती क्षमादेवी जैन, मधुबन, दिल्ली।
४०. श्रीमती कमलादेवी ध.प. श्री राजेन्द्र कुमार जैन टोडरका, ठाणे (महा.)।
४१. श्री अजित प्रसाद जैन बब्बेजी, श्री राजकुमार श्रवण कुमार जैन, लखनऊ।
४२. श्री प्रभा चन्द गोधा, ४५ भगत वाटिका, सिविल लाइन, जयपुर-६ (राज.)।
४३. श्री गोपीचन्द विपिन कुमार जैन, सरधना टैन्ट हाउस, गंजमंडी, सरधना।

४४. श्रीमती रतनसुन्दरी देवी ध.प. श्री वीरचन्द जैन, चूड़ीवाली गली, चौक बाजार, लखनऊ।
४५. डॉ. सुभाषचन्द जैन, रातानाड़ा क्लीनिक, रातानाड़ा बाजार, जोधपुर (राज.)।
४६. श्री प्रमोद कुमार जैन (मुजफ्फरनगर वाले) ३५ एच.वी.रोड, न्यू मार्केट, थरपकनाग़ंची (बिहार)।
४७. श्री विजेन्द्र कुमार जैन, के.-१/२० मॉडल टाउन, दिल्ली।
४८. श्री कैलाश चंद जैन, ४५ भगत वाटिका, सिविल लाइन, जयपुर (राज.)।
४९. श्री सुभाषचंद जैन, श्री दि. जैन पार्श्वनाथ चैत्यालय, ४०५ डॉ. मुखर्जी नगर, दिल्ली।
५०. श्री सुभाष चन्द जैन सर्राफ, टिकैतनगर (बाराबंकी) उ.प्र.।
५१. श्री चन्द्रसेन जैन, द्वारा-सुमेरचन्द, चन्द्रसेन जैन, सब्जी मण्डी, नहटौर (बिजनौर)।
५२. श्री सुधीर कुमार जैन जे.ई., नन्द किशोर जैन, शारदा नहर खण्ड, शाहजहाँपुर।
५३. श्री सुकुमालचंद जैन, मोती ट्रेडिंग कम्पनी, टी.आर. फुकन रोड, फैन्सी बाजार, गौहाटी।
५४. श्री अनिल पुलकित सेठी, बी १/१२२, फेज-२, अशोक विहार, दिल्ली-११००५२।
५५. श्री चन्द्रमोहन बंसल, ११, पूसा रोड, करोलबाग, नई दिल्ली-५।
५६. श्री गिरधर प्रसाद आमोद प्रसाद जैन, जैन वस्त्रालय, काली मार्केट, सिवान (बिहार)।
५७. श्री सतीश चन्द जैन, ३१ सिविल लाइन, म.नं.-१०, सेक्टर-२, टाइप-५ झांसी।
५८. श्री स्वरूप चन्द कासलीवाल, नया बाजार, अजमेर (राज.)।
५९. श्री हुलास चन्द सेठी, अयोध्या शुगर मिल्स, राजा का सहसपुर, बिलारी (उ.प्र.)।
६०. श्रीमती किरण देवी जैन ध.प. श्री नरेन्द्र कुमार जैन, सिविल लाइन,सीतापुर (उ.प्र.)।
६१. श्रीमती संतोष जैन ध.प. श्री प्रवीण कुमार जैन, बाराबंकी (उ.प्र.)।
६२. श्री सूरजमल पुत्र श्री विनीत कुमार जैन, मोहल्ला गंजकटरा पूरणटरा पूरणजाट, जैन विला, मुरादाबाद (उ.प्र.)।
६३. स्व. श्री शिखर चन्द जैन, 'टिम्बर कमीशन एजेन्ट', शंकरगंज, हापुड़ (उ.प्र.)।
६४. श्रीमती राजेश्वरी जैन मातेश्वरी श्री राकेश जैन ३१, सिविल लाईन, सीतापुर।
६५. श्री राजकुमार जैन, मैसर्स रविदत्त प्रेमचन्द जैन बारदाने वाले, श्यामगंज, बरेली।
६६. श्री बलवीर जैन, द्वारा-जानकी एक्सटेंशन रिफाइनरी, गाँधीगंज, शाहजहाँपुर।
६७. श्री पन्नालाल सेठी, डीमापुर (नागालैंड)।
६८. श्री वीरेन्द्र कुमार जैन, ईदगाह कालोनी, आगरा (उ.प्र.)।
६९. श्री पोखपाल जैन, द्वारा-नावेल्टी मेटल इंडिया, मानसिंह गेट, अलीगढ़ (उ.प्र.)।
७०. श्रीमती रश्मि जैन ध.प. श्री विजय कुमार जैन, दरियागंज, नई दिल्ली।
७१. श्रीमती विमला देवी ध.प. श्री प्रमोद कुमार जैन इंजी., शाहजहाँपुर (उ.प्र.)।
७२. स्व. श्रीमती कैलाशवती जैन ध.प. श्री कैलाश चन्द जैन इंजी., तोपखाना बाजार, मेरठ।
७३. श्रीमती अरुण कुमार नांद्रेकर ध.प. भाऊ साहेब नांद्रेकर, मुलुन्ड (वेस्ट) मुम्बई।
७४. श्री भागचन्द मनीष कुमार ठोलिया, द्वारा-किरन एजेंसी, पो. बुरहानपुर, (म.प्र.)।
७५. श्री कैलाशचन्द राजकुमार जैन रावंका, पो. बिसवां (सीतापुर) उ.प्र.।

७६. श्रीमती विद्यावती जैन, राजौरी गार्डन, नई दिल्ली।
७७. श्री आनन्द प्रकाश जैन (सौरम वाले) एवं सुपुत्र श्री मदन कुमार, प्रदीप कुमार एवं प्रवीण कुमार जैन, धर्मपुरा, गाँधीनगर, दिल्ली।
७८. श्रीमती अरुणा जैन, ध.प. प्रवीन्द्र कुमार जैन, प्रीतमपुरा, दिल्ली।
७९. श्रीमती पुष्पादेवी, ध.प. महेन्द्र कुमार जैन, पुष्पांजली एन्क्लेव, दिल्ली।
८०. श्री बाबूलाल तोताराम जैन, भुसावल (महा.)।
८१. डॉ. अनुपम जैन, सुदामा नगर, इंदौर (म.प्र.)।
८२. श्री विनय कुमार जैन, ज्वैलर्स, दरीबाकलां, दिल्ली।
८३. स्व. श्री आनन्द प्रकाश जैन 'शान्तिप्रिय', जम्बूद्वीप-हस्तिनापुर (मेरठ) उ.प्र.।
८४. श्रीमती राजुलबाई ध.प. श्री नेमीचन्द जैन लोहाड़े, पो. कोपरगाँव (महा.)।
८५. श्री धन्नालाल गोधा, मल्हारगंज, इंदौर (म.प्र.)।
८६. श्री सुनील कुमार मनोज कुमार जैन, झिलमिल कालोनी, दिल्ली।
८७. श्रीमती आशा जैन ध.प. श्री राजेश कुमार जैन बरुआ सागर (उ.प्र.)।
८८. श्री पारसमल डूंगरमल जी पाटनी पो. मेड़तासिटी, नागौर (राजस्थान)।
८९. श्री अनिल कुमार जैन (गुड़गांव वाले) प्रियदर्शनी विहार, दिल्ली-९२।
९०. श्रीमती कृष्णा बाई नेमीनाथ जैन, पी. वाले, हैदराबाद (आन्ध्र प्रदेश)।
९१. श्रीमती मंजूलता जैन ध.प. श्री प्रभात चन्द गोधा, नया बाजार, अजमेर (राज.)।
९२. श्री प्रमोद कुमार जैन, पारस प्रिन्टर्स, शाहदरा-दिल्ली।
९३. श्री चांदमल अनिल कुमार सरावगी, किशनगंज (बिहार)।
९४. कुमारी अदिती सुपुत्री श्री अपोलो जी जैन सौगानी, इंदौर।
९५. श्रीमती मंजूलता ध.प. प्रभाचन्द गोधा-नया बाजार, अजमेर।
९६. श्री सुचेद्र कुमार शैलेन्द्र कुमार जैन, डाल्टनगंज (झारखंड)।
९७. श्रीमती जतनदेवी लक्ष्मीचंद जैन, चेन्नई (तमिलनाडु)।
९८. श्रीमती सखाई जैन ध.प. श्री जीतमल जैन, मड़ाना (कोटा) राज.।
९९. श्री मोहित जैन पुत्र मुकेश जैन, जगन्नाथ जैन पहाड़िया, फतेहपुर (शेखावटी) राज.।
१००. श्री नरेश जैन बंसल, गुड़गाँवा (हरि.)।
१०१. श्रीमती रतनबाई ध.प. राजेन्द्र प्रकाश कोठिया, कोटा (राज.)।
१०२. श्रीमती संतोष जैन ध.प. श्री अजीत कुमार जैन, भिवाड़ी (राज.)।
१०३. श्रीमती प्रेमलता जैन ध.प. श्री सुशील कुमार जैन, मलाड़ (मुम्बई)।
१०४. श्री राजेन्द्र कुमार पचौलिया, इंदौर (म.प्र.)।
१०५. स्व. श्री मोहनलाल हेमचंद गांधी, सतारा (महा.)।
१०६. श्रीमती आरती जैन ध.प. श्री प्रकाशचंद जैन 'शीशे वाले', इलाहाबाद (उ.प्र.)
१०७. डॉ. विमला जैन "विमल" ध.प. श्री प्रकाशचंद जैन, फिरोजाबाद (उ.प्र.)
१०८. श्री प्रद्युम्न कुमार जैन छोटी सा., अमरचंद जैन सर्राफ, लखनऊ (उ.प्र.)

भजन

रचयित्री-प्रज्ञाश्रमणी आर्यिका चन्दनामती

प्रतिज्ञा कथानक से जुड़ी सती मनोवती की दर्शन प्रतिज्ञा का ऐतिहासिक प्रसंग

तर्ज-सौ साल पहले.....

बीते युगों में यहाँ पर, एक सती आई थी-२।
गजमोतियों की कथा, उसने बनाई थी।।टेक.।।

हस्तिनापुर की कन्या मनोवती बल्लभगढ़ ब्याही थी।
प्रतिज्ञा देवदर्शन की, सदा उसने निभाई थी।।
लज्जा के कारण उसने, बात नहिं बताई थी-२।
गजमोतियों की कथा.....।।१।।

भरे भंडार मोती के, कभी उस बल्लभगढ़ में थे।
किन्तु दर्शन की निंदा से, सेठ भी बने भिखारी थे।।
परिवार ने बेटे के, संग बहू निकाली थी-२।
गजमोतियों की कथा.....।।२।।

सती की उस प्रतिज्ञा से, देव के आसन कांपे थे।
रत्नपुरि नगरी में मंदिर व मोती देने आते थे।।
सात उपवासों को करके, महिमा दिखाई थी-२।
गजमोतियों की कथा.....।।३।।

पति पत्नी ने मंदिर एक, रत्नपुरि में बनाया था।
वहीं फिर बल्लभगढ़ वालों से, मिलने का क्षण आया था।।
दर्शन प्रतिज्ञा तब से, सबने निभाई थी-२।
गजमोतियों की कथा.....।।४।।

यह कहानी प्रभू दर्शन की, महिमा को बताती है।
आत्मज्योती जलाने में, भक्ति ही काम आती है।।
"चन्दनामती" यह महिमा, शास्त्रों में गाई थी-२।
गजमोतियों की कथा.....।।५।।

प्रतिज्ञा के प्रति दो शब्द

-डॉ. कु. मालती जैन, मैनपुरी

गणिनी आर्यिका श्री ज्ञानमती माताजी के कथा-साहित्य के विवेचन का दुधमुंहा प्रयास करते समय अनायास ही मुझे महाकवि कालिदास की यह पंक्ति स्मरण हो आई है—

"कीरति भनति भूति मल सोई, सुरसिर सम सब कर हित कोई।"

सत्साहित्य वही है जो गंगा के समान सबका हित करने वाला हो। कोरे कागजों पर कलम की पिचकारी से स्याही की होली खेलने वाले तथाकथित साहित्यकारों की कमी नहीं है किन्तु ऐसे साहित्यसेवी कभी-कभी ही जन्म लेते हैं जिनका साहित्य "सत्यं शिवं सुन्दरं" का संवाहक बनकर जीवन में अशुभ का निवारण कर, शुभ को प्रतिष्ठित करता है। बहुमुखी प्रतिभा की धनी आर्यिका श्री ज्ञानमती जी की तपःपूत लेखनी ने साहित्य की विविध विधाओं— उपन्यास, कहानी, नाटक, निबंध, कविता, स्तोत्र-साहित्य, पूजा-साहित्य, बाल-साहित्य, अनुवाद आदि को अलंकृत किया है। उनकी प्रत्येक कृति का अपने क्षेत्र में विशिष्ट स्थान है। गहन गंभीर चिन्तन में प्रतिक्षण आकंठ निमग्न रहने वाली आर्यिका जी की अभिरुचि जैनदर्शन के क्लिष्ट ग्रंथों के अनुवाद में रमती है, फिर भी जनसाधारण को जैन पौराणिक साहित्य से परिचित कराने के उद्देश्य से उन्होंने कथा-साहित्य का भी सृजन किया है, जिसकी

अपनी उपयोगिता है, अपना आकर्षण है।

आज के भौतिकवादी युग में जब बेचारे व्यक्ति के सुनहले दिन को दो रोटियों की तलाश छीन लेती है और रूपहली रातें टी.वी. के रंगीन पर्दे के नाम कर दी जाती हैं तब किसे फुरसत है भारी-भरकम पुराणों को पढ़ने-सुनने की? वैसे तो पढ़ने का अवकाश ही कहाँ है और यदि कभी मनोरंजन के लिए कुछ पढ़ा भी जाता है तो जासूसी, अपराध-प्रधान कहानियाँ, सस्ते अश्लील उपन्यास और कॉमिक्स ही युवापीढ़ी के हाथों में नजर आते हैं। नैतिक मूल्यों के ह्रास के साथ इस समय में आवश्यकता थी-ऐसी उपयोगी कथा-साहित्य के सृजन की, जो अपनी सांस्कृतिक और धार्मिक विरासत से अनभिज्ञ, दिग्भ्रमित युवा पीढ़ी को अपने पूर्वजों के दिव्य आदर्श चरित्रों का ज्ञान करा सके, जिसका अनुसरण कर वह अपने जीवन के कंटकाकीर्ण मार्ग को सुगम बना सके। पूजनीया आर्यिका जी ने कथा पुस्तकों की रचना कर आधुनिक युग की इस ज्वलंत मांग की पूर्ति कर नई पीढ़ी को अपने उपदेशों द्वारा जो पाथेय प्रदान किया है, उसके लिए मानव समाज उनका सदैव ऋणी रहेगा।

विभिन्न कथा साहित्य की शृँखला में यहाँ 'प्रतिज्ञा' नामक रोमांचक कथानक की समीक्षा प्रस्तुत है—

"प्रतिज्ञा" हस्तिनापुर के सेठ महारथ की सुशील, धर्मपरायण पुत्री मनोवती के दृढ़प्रतिज्ञा, निर्वाह और उसके पुण्यफलों का कथा वृत्तान्त है। मनोवती अपने बाल्यकाल में ही दिगम्बर जैन मुनि के समक्ष यह नियम लेती है—"**जब मैं जिनमंदिर में**

जिनेन्द्रदेव के समक्ष गजमोती चढ़ाऊँगी, तभी भोजन करूँगी" इस कठोर प्रतिज्ञा-निर्वाह में उसे अनेक कष्टों का सामना करना पड़ता है, पर वह विचलित नहीं होती। विवाह के उपरान्त ससुराल में संकोचवश अपनी प्रतिज्ञा का उद्घाटन न करने के कारण, वह ३ दिन का उपवास करती है। चौथे दिन गजमोतियों से प्रभु की पूजा करके ही अन्न-जल ग्रहण करती है। तदनन्तर अपने पति के देशनिर्वासन के परिणामस्वरूप नंगे पैर जंगलों में भटकती हुई, जिनदर्शन के अभाव में ७ दिन का व्रत रखती है। इस दृढ़प्रतिज्ञ नारी की तपस्या से स्वर्ग में देवताओं का आसन कम्पित होता है और वे सघन वन में जिनमंदिर का निर्माण कर गजमुक्ताओं की व्यवस्था करते हैं। इसी प्रतिज्ञा-निर्वाह के पुण्यफल से भविष्य में मनोवती के पति उन्नति के शिखर पर आरूढ़ होते हैं। लेखिका के ही शब्दों में यहाँ देखिए—

"बिना नियम के यह मनुष्य जीवन व्यर्थ है, इसलिए कुछ न कुछ नियम अवश्य लेना चाहिए।"

"हमें दृढ़ श्रद्धानपूर्वक जिनदर्शन की प्रतिज्ञा लेकर अपना संसार स्वल्प कर लेना ही चाहिए।"

"यह जिनदर्शन ही तो एक दिन अपनी आत्मा का दर्शन कराकर अपने अंदर ही परमानंदमय परमात्मा को प्रकट कराने वाला है।"

इस पौराणिक कथा के माध्यम से लेखिका का उद्देश्य जनमानस में प्रतिज्ञा-पालन और देव-दर्शन के माहात्म्य का प्रतिपादन करना है।

प्रतिज्ञा

(१)

सेठ हेमदत्त के घर की सजावट किसी राजमहल से कम नहीं दिख रही है, कहीं पर मोतियों की झालरें लटक रही हैं, कहीं पर मखमल के चंदोये बंधे हैं। दरवाजों-दरवाजों पर सुन्दर-सुन्दर रत्नों से जड़े हुए तोरण बंधे हुए हैं। कहीं पर रंग-बिरंगी काँच के झरोखे से छन-छन कर आती हुई सूर्य की किरणें इन्द्रधनुष की आभा बिखेर रही हैं तो कहीं पर रेशमी पर्दे आकाशगंगा के समान लहरा रहे हैं। घर और बाहर का भाग चारों तरफ से नगर के नर-नारियों से खचाखच भरा हुआ है। सेठानी हेमश्री आज खुशी से फूली नहीं समा रही हैं, सो ठीक ही है उसके लाडले सातवें पुत्र बुद्धिसेन की शादी होकर घर में अतिशय रूपवती बहू आई हुई है। आज सेठ जी के यहाँ जीमनवार है। बल्लभपुर

शहर के सभी स्त्री-पुरुष प्रसन्नमुख दिख रहे हैं, कोई जीमकर जा रहे हैं और कोई आ रहे हैं। गली-गली में धूम मची हुई है। सभी के मुख पर एक ही चर्चा है कि भाई! हेमदत्त सेठ का आखिरी संबंध बहुत अच्छा हुआ है उन्हें बहुत अच्छे समधी मिले हैं। हस्तिनापुर के सेठ महारथ बावन करोड़ दीनारों के धनी हैं, उनकी सुपुत्री मनोवती बहुत ही सुशील कन्या है। उसने भी पूर्वजन्म में महान् पुण्य अर्जित किया होगा जो उसे ऐसा घर और वर मिला है, क्या सुन्दर अनुरूप जोड़ी है? कोई महिला चर्चा कर रही है, अरी बहन! अपने सेठ हेमदत्त भी छप्पन करोड़ दीनारों के मालिक हैं। इनके बड़े-बड़े व्यापार हैं, ये बड़े नामी जौहरी हैं। सुना है कि इनके नये समधी भी बहुत विख्यात जौहरी हैं। वे भी तो बल्लभपुर शहर में बहुत ही विख्यात पुरुष हैं। दूसरी बोल उठती है, बहन! सम्पत्ति का क्या देखना, बस लड़के को लड़की अनुकूल चाहिए और लड़की को पति अनुकूल चाहिए जिससे उन दोनों का दांपत्य जीवन सुख से चले। फिर यदि पैसा भाग्य में है तो लड़का अपने आप अपने पुरुषार्थ से कमाकर धनी बन जाता है और भाग्य में नहीं है तो कई पीढ़ियों का कमाया हुआ धन भी पता नहीं चलता कि किधर चला जाता है। मैं तो मेरी कन्या के लिए यही सोचा करती हूँ कि इसे पति धर्मात्मा मिले। तीसरी बोलने लगती है सच है बहन, मेरी लड़की का पति दुर्व्यसनी है, सारी बाप की कमाई की पचासों करोड़ सम्पत्ति बरबाद कर दी। मेरी लड़की के गहने जेवर भी बेच कर खा गया। क्या करूँ, मैं तो बहुत दुःखी हूँ। तभी एक महिला बोलने लगती है हाँ सच है बहन! इस मनोवती ने तो खूब ही पुण्य किया होगा, तभी इसे सर्वगुणसम्पन्न पति मिला है। इस प्रकार से शहर में तरह-तरह की मधुर चर्चायें चल रही हैं।

सेठ हेमदत्त अपनी बैठक में आनन्द से बैठे अपने रिश्तेदारों से मनोविनोद कर रहे हैं। अकस्मात् सेठानी जी पहुँचती हैं तो सभी इधर-उधर हो जाते हैं। सेठानी उदासमुख हुई यथोचित स्थान पर बैठ जाती हैं। सेठ जी सेठानी को चिंतित उदास मुख देखकर आश्चर्य से पूछते हैं — कहिये, क्या बात है? अपने यहाँ आज तो चारों तरफ मंगल ही मंगल हो रहा है, खुशी का कोई पार नहीं है, फिर इस समय आपका मुख उदास क्यों दिख रहा है? अरे! घर में कामकाज करने वाले तो बहुत लोग हैं और फिर दास-दासियाँ आपके इशारे पर दौड़ रहे हैं फिर भला आप इतना क्यों थक गयीं? सेठानी विनम्रता से उत्तर देती हैं कि मैं कामकाज से नहीं थक गई किन्तु मेरी चिन्ता का कुछ कारण दूसरा ही है।

"सो क्या है?"

"नई बहू तो मौन लिए बैठी है कुछ बोलती ही नहीं है।"

"तो क्या हो गया? इसकी चिन्ता तुम्हें क्यों हो गई? (हँसने लगते हैं)"

"अभी तक घर की किसी भी महिला ने खाना नहीं खाया है और आप कहते हैं कि चिन्ता क्यों हो गई?"

सेठ जी आश्चर्यचकित होकर पूछते हैं —

"क्यों? खाना नहीं खाने का क्या कारण है?"

"जब सब जीमन निपट चुका, तब हमने सभी आगत मेहमानों को भी जिमा दिया, आप लोग सभी जीमकर आ गये। तब मैं बहू के पास गई और बोली कि बहू! चलो भोजन करो, मुझे खड़े-खड़े घंटों हो गये किन्तु वह कुछ बोलती ही नहीं है।"

"अरे! यह रंग में भंग कहाँ से आ गया है?"

सेठजी एक मिनट कुछ सोचते हैं पुनः सेठानी को समझाते हुए कहते हैं —

"आप चिन्ता न करें। मेरी समझ में नयी बहू संकोच कर रही होगी, छोड़ो, आप सभी लोग भोजन कर लो फिर देखा जायेगा।"

सेठानी वापस चली आती हैं, सब लोग भोजन कर लेते हैं। मनोवती निश्चिंत और प्रसन्नचित्त अपने मन में णमोकार मंत्र का जाप कर रही है। दूसरे दिन भी यही स्थिति रहती है। तब सेठजी कहते हैं देखो! आज अपने सभी परिवार के लोग भी भोजन नहीं करेंगे और तभी भेद खुलेगा अन्यथा नहीं। फिर भी मनोवती मौन है, मन में महामंत्र का जाप चल रहा है। जब पूरे परिवार ने अन्न-जल नहीं लिया और फिर भी बहू ने मौन नहीं छोड़ा, तब सेठजी ने तुरंत ही हस्तिनापुर खबर भेज दी। सेठ महारथ और सेठानी महासेना एकदम घबरा उठे। हाय! मेरी पुत्री पर यह क्या मुसीबत आई? और तत्क्षण ही अपने पुत्र मनोज कुमार को बल्लभपुर के लिए रवाना कर दिया और आप चिंतित हो सोचने लगे —

महासेना माता बोलती हैं कि —

"विदा करते समय मैंने मनोवती को कितनी शिक्षाएं दी थीं कि बेटी! अब तू जहाँ जा रही है, वही तेरा घर है। तेरी सासू हेमश्री ही तेरी माता हैं और तेरे ससुर हेमदत्त ही तेरे पिता हैं। तू उन्हें कुछ दिन में इतना आकर्षित कर लेना कि वे तेरे विषय में यह पुत्रवधू है या पुत्री? ऐसा भेद ही न कर सकें?"

महारथ सेठ भी कहते हैं —

"मैंने भी तो यही शिक्षा दी थी कि बड़ों की आज्ञा पालना और छोटों पर प्यार रखना, जिससे घर में वातावरण सदैव सुखद स्वर्ग जैसा रहेगा।"

"अपनी कन्या पर मुझे विश्वास है कि उससे कोई भी गलती नहीं हो सकती है। फिर भी पता नहीं क्या कारण है जो कि वह तीन दिन से भूखी है?"

माता रो पड़ती है तभी सेठ जी सान्त्वना देते हुए कहते हैं—

"आप इतनी समझदार होकर यह बच्चों जैसे कार्य क्यों कर रही हो? शांति रखो, मनोज गया है। वह आयेगा तो सारी बात स्पष्ट हो जायेगी। व्यर्थ ही मन में नाना प्रकार के संकल्प-विकल्प करके मन को क्यों खिन्न कर रही हो?"

"सच है, पुत्रियों के पीछे सदैव दुःख ही दुःख रहते हैं। युवती हुई तो ब्याह की चिन्ता? ब्याह हो जाये तो उसको विदा करते समय कलेजा फटता है, उसको याद कर-करके रोना आता रहता है और यदि उसे ससुराल में सुख न मिला तो फिर रातदिन घुलन ही घुलन रहती है।"

"व्यर्थ ही इतना संताप क्यों करती हो? तुम्हें क्या पता, सारी हस्तिनापुरी नगरी के लोग इस घर और वर की सराहना कर रहे हैं और फिर ससुराल की अनुकूलता तुम कैसे नहीं समझ रही हो? देखो! उस आदमी ने तो यह भी बताया था कि कल के दिन सेठजी स्वयं निराहार रहे हैं और सारे परिवार ने भी भूख हड़ताल कर दी है कि जिससे बहूरानी कुछ बोलें और भोजन करें किन्तु वह फिर भी मौन है।"

इतना सुनकर सेठानी चुप हो जाती हैं और सेठजी बाहर चले जाते हैं—

मनोजकुमार बल्लभपुर पहुँचकर सेठजी के घर पर पहुँचते हैं। सब लोग स्वागत करते हैं। पुनः पहले यही बोलते हैं—भाई! आपकी बहन ने तीन उपवास कर लिये, आज चौथा दिन है। क्या कोई व्रत चल

रहा है? या अन्य कोई कारण है? पहले इस बात का निर्णय करो, पीछे कोई अन्य बात होगी। मनोज बहन से मिलता है और बोलता है-

"बहन! तुमने यह क्या किया? यहाँ के मंगलमयी वातावरण को अमंगलीक क्यों बना दिया? तुमने भोजन क्यों नहीं किया?"

"भ्रात! मैंने महामुनि के निकट ऐसी प्रतिज्ञा ली थी कि जब मैं जिनमंदिर में जिनेन्द्रदेव के समक्ष गजमोती चढ़ाऊँगी, तब भोजन करूँगी। सो भाई! यहाँ पर कहीं मुझे गजमोती तो दिखते नहीं हैं अतः तुम कुछ नहीं बोलना, बस जल्दी से मुझे घर लिवा ले चलो, मैं वहीं गजमोती के पुंज चढ़ाकर जिनदर्शन करके भोजन करूँगी।"

मनोज सेठ हेमदत्त से मिलकर निवेदन करते हैं कि आप अभी इसे मेरे साथ भेज दीजिए। घर पहुँच कर भोजन करेगी। आप कोई चिन्ता न करें। लड़की भोली है। संकोच कर रही है। तब सेठ जी ने कहा आपकी यह बात कुछ महत्त्व नहीं रखती है। जो कारण है, सो आपको स्पष्ट करना ही पड़ेगा। फिर यहीं पर भोजन करने के बाद मैं तुम्हारे साथ विदा कर दूँगा। तब मनोज कुमार ने सारी स्थिति स्पष्ट कर दी। सेठ जी सुनकर हँस पड़े और तत्क्षण ही अन्दर पहुँचकर बहू को पुत्री के समान समझाते हुए बोले—बेटी मनोवती! तूने व्यर्थ ही संकोच क्यों किया? मुझे क्यों नहीं बताया? और इतना कहते ही तुरंत भंडारी को बुलाकर भंडार खुलवा दिया।

हीरे-मोती-माणिक और रत्नों के ढेरों की जगमगाहट से देखने वालों की आँखें चकाचौंध हो गईं। उनका प्रकाश घर भर में फैल गया, मानों सेठ जी का पुण्य ही अपना उद्योत फैला रहा है।

मनोवती ने सास-श्वसुर की आज्ञा से स्नान करके शुद्ध वस्त्र पहन

कर गजमोतियों के पुंज डिब्बी में रखे और जिनमंदिर पहुँच गई। अतीव भाव-भक्ति से श्री जिनेन्द्रदेव के दर्शन करके अपने जीवन को कृतार्थ माना और प्रभु के सन्मुख गजमोतियों के पुंज चढ़ा दिये। घर आकर भोजन किया। अनन्तर मनोज कुमार के आग्रह से सेठजी ने बहू की पीहर के लिए विदाई कर दी। सभी ने उसके धैर्य की सराहना की। देखो! बहू बहुत ही सुलक्षणा है। अपने नियम के निर्वाह में अटल है। धैर्य के साथ तीन उपवास कर गई, रोने-धोने का काम नहीं, घबराने का भी काम नहीं, प्रसन्न मुख ही रही। यह एक होनहार स्त्रीरत्न है।

(२)

मालिन अपने पतिदेव से कह रही है। देखो न! कितने बेशकीमती मोती हैं। माली की आँखें मोतियों की जगमगाहट से उन पर नहीं टिक रही हैं। वह स्तब्ध रह जाता है। ओहो! बहुत बड़े आश्चर्य की बात है। मेरे यहाँ न जाने कितनी पीढ़ियों से इसी मंदिर जी की सेवा का काम चल रहा है, मेरे पुरखों ने कभी भी ऐसा बढ़िया मोती आँखों से भी नहीं देखा था। आज इस बल्लभपुर में कौन ऐसा पुण्यवान् आया है जो इन मोतियों को चढ़ा गया है? क्या मंदिर जी में देवता लोग तो नहीं आये हैं? हमने बहुत बार अपने बाबा के मुख से सुना था कि जैन मंदिर जी में कभी-कभी देवता लोग दर्शन को आया करते हैं। हो सकता है उन्होंने ऐसे दिव्य मोतियों के पुँज चढ़ाए हों? कुछ भी हो देखो चुन्नू की माँ! इन्हें अपने घर में नहीं रखना है। मालूम है तुम्हें! अगर राजा को पता चल जायेगा कि एक माली के घर इतनी उत्तम वस्तु है तो वह मुझे चोर समझकर मेरी सारी संपत्ति लुटवा लेगा और मुझे देश से भी निकाल देगा।

भाई! यह बढ़िया माल अपने घर में कैसे रखा जा सकता है? इसलिए तुम बगीचे से बढ़िया चमेली के फूल ले आओ और उन फूलों के साथ में इनकी माला बनाकर राजमहल में ले जाना। तुम्हें इनाम भी अच्छा मिलेगा ! समझ गई ना.....बस चतुराई से काम करना।

मालिन बहुत ही सुन्दर हार गूंथकर राजमहल में पहुँच जाती है और महाराजा साहब की छोटी महारानी के गले में पहना देती है। रानी विभोर हो उठती हैं और उसे बहुत सी सुवर्ण की मुहरें इनाम में दे देती हैं। उधर बल्लभपुर नरेश मरुदत्त महाराज को रनवास से कुछ सूचना मिलते ही वे अकस्मात् राजदरबार से चलकर बड़ी महारानी मनोरमा जी के महल में पधारते हैं और महारानी की अतीव विक्षिप्त मनःस्थिति को देखकर अवाक् रह जाते हैं—

"प्रिये! राजवल्लभे! अकस्मात् ही तुम्हारी चिन्ता का क्या कारण है? कहो शीघ्र ही स्पष्ट कहो!.....किसकी मृत्यु नजदीक आई है कि जिसने तुम्हारे मन को व्यथित किया है? क्या उसे नहीं मालूम कि मेरा शासन कितना कठोर है?"

महारानी जैसे-तैसे अपने धैर्य को संभालकर आँसू पोंछते हुए बोलती हैं—

"महाराज! अब मैं इस घर में जीवित नहीं रह सकती। ओह!.....मेरा इतना अपमान!.....आपका मेरे प्रति सब दिखावटी प्रेम है, आपको तो अपनी कुसुमा रानी पर ही सच्चा प्रेम है और यही कारण है कि आज यह दुर्दिन मुझे देखने को मिला। बस अब मुझे आपका किंचित् भी प्रेम नहीं चाहिए। मुझे तो बस एकमात्र विष चाहिए।"

महाराज का सारा शरीर निश्चेष्ट जैसा हो जाता है। वे एकटक

महारानी को देखते ही रह जाते हैं पुनः सान्त्वना देते हुए कहते हैं—

"प्राणवल्लभे! तुमने आज मेरे प्रति यह अन्यथा कल्पना कैसे बना ली है? क्या मैंने कभी तुम्हारी उपेक्षा की है? अथवा तुम्हें किसी प्रकार का कष्ट दिया है? कहो तो सही आखिर बात क्या है? मेरे हृदय को इस तरह क्यों व्यथित कर रही हो?"

"बस बस! अब आप अपनी इन चिकनी-चुपड़ी बातों को रहने दीजिए। अब तो जो होना था, सो हो ही गया। अब मुझे इस संसार में रहकर ऐसा अपमान नहीं झेलना है।"

"देवि! बिना कुछ कहे आखिर मैं कोई केवलज्ञानी तो नहीं हूँ, तुम अपने अपमान को बताओ तो सही! फिर देखो उसका सही प्रतिकार होता है या नहीं? एक बार मुझे प्रेम की परीक्षा में उत्तीर्ण होने का अवसर तो दो? बोलो, किसने तुम्हारा अपमान किया है?

"नाथ! इस नगर में मेरा क्या सम्मान है? आप ही बताइये! जब जाति की मालिन भी मेरा अपमान कर सकती है तो इससे बढ़कर दुःख की बात मेरे लिए अब और कौन सी हो सकती है?"

महाराज अतीव आश्चर्य के साथ आगे की पूरी बात समझने की इच्छा व्यक्त करते हैं—

"अरे! मालिन!.....उसने क्या अपमान किया है?"

"वह आज एक सुन्दर हार बनाकर लाई थी जिसमें एक-एक चमेली की कली के बीच में बहुत ही ऊँची जाति के सुन्दर-सुन्दर गजमोती गुंथे हुए थे। उसने वह हार.....आपकी प्राण-प्यारी महारानी कुसुमाजी को पहना दिया। यदि आप उसका सम्मान अधिक न करते होते तो मालिन का भला ऐसा अतिसाहस क्यों होता?"

राजा मरुदत्त सारी स्थिति को स्पष्ट समझ लेते हैं और एक बार तो उस मालिन के प्रति क्रोध से आगबबूला हो उठते हैं। दूसरे ही क्षण अपने को एक तुच्छ महिला के प्रति क्रोध करना कर्तव्य नहीं है, ऐसा सोचकर अपने क्षत्रियोचित धर्म को लक्ष्य में रखते हुए रानी को सान्त्वना देते हैं-

"महादेवि! बस!.....इतनी तुच्छ सी बात को लेकर आपको इतना विषाद! ओह!.....वल्लभे! उसके लिए तो मालिन ने फूल सहित मोतियों का हार बनाया है और तुम्हारे लिए बस एकमात्र गजमोतियों का ही हार बनवाऊँगा। उठो, मुखप्रक्षालित करो और विषाद का सर्वथा त्याग कर यह भाव भी मन से निकाल दो कि मेरे हृदय में तुम्हारे सम्मान में किंचित्मात्र भी कमी है। देखो! तुम इतनी समझदार स्त्रीरत्न होकर इन क्षुद्र बातों में नाना प्रकार के विकल्पों को क्यों कर रही हो?"

महाराज स्वयं महारानी का हाथ पकड़कर उठाकर मुख प्रक्षालित कराते हैं और वातावरण शान्त हो जाता है।

(३)

दूसरे दिन महाराज मरुदत्त रत्नों से जटित सिंहासन पर विराजमान हैं। दूसरी तरफ मंत्री, आमात्यगण बैठे हुए हैं और सामने एक तरफ सभासद लोग उपस्थित हैं। वातावरण प्रसन्न है, समय देखकर राजा ने मंत्री से कहा—

"मंत्रिन्! बल्लभपुर शहर के सभी जौहरियों को बुलाना है।"

"जो आज्ञा महाराज!"

मंत्री ने शीघ्र ही कर्मचारियों को बुलाकर आदेश दिया कि जाओ

शहर के सभी जौहरियों को राजदरबार में उपस्थित होने के लिए सूचना करो। कर्मचारियों ने तत्काल ही सरकार की आज्ञा शिरोधार्य करके प्रत्येक जौहरी की दुकान-दुकान पर पहुँच कर उन्हें महाराज का आदेश सुना दिया कि महाराज ने आप सबको याद किया है। तब सभी जौहरी सेठ आपस में मिलकर विचार-विमर्श करने लगे, क्या कारण है जो आज महाराज ने हम सबको ही अकस्मात् बुलाया है? अवश्य ही कुछ न कुछ रहस्य होना चाहिए? जो भी हो, अन्त में सबों ने यही निर्णय किया कि अपन सब लोग एक साथ चलें और कोई भी बात हो, उसका उत्तर भी एक तरह का ही होना चाहिए। सब दरबार में उपस्थित होते हैं। महाराज भी सबका विशेष रूप से सम्मान करते हैं और सभा में बैठने का आदेश देते हैं। कुछ क्षण कुशल समाचार के अनन्तर महाराज मंद-मंद मुस्कान से सभासदों को अभिषिक्त करते हुए के समान ही बोलते हैं—

"आप लोग जौहरी हैं अतः गजमोती पैदा कर दीजिए और जो कीमत लगे सो हमसे लीजिए।"

सभी सेठगण एक क्षण आपस में एक-दूसरे का मुख देखने लगते हैं, पुनः उन्हें जब उस समूह में कोई भी इस कार्य के लिए सक्षम नहीं दिखता है तब वे एक स्वर में कहते हैं—

"महाराज! यह काम तो हम लोगों में से कोई भी नहीं कर सकता है। गजमोती पैदा करना बहुत कठिन काम नहीं असंभव ही है।"

"देखो! कुछ क्षण और सोच लो, सभी लोग अपने-अपने को तोल लो, फिर बोलो।"

कुछ देर बाद भी सभी जौहरी यही उत्तर देते हैं कि हम लोगों में से किसी के यहाँ भी गजमोती नहीं हैं और न ही हम लोग कहीं से ला

सकते हैं। उन्हीं में हेमदत्त सेठ भी थे उन्होंने भी ना कर दिया। पुनः सभी लोग महाराज से निवेदन करते हैं—

"महाराज! और कुछ आज्ञा दीजिए कि जिसका हम लोग पालन कर सकें।"

"बस! हमें इस समय गजमोतियों की आवश्यकता थी। आप किसी के पास नहीं हैं सो ठीक! लेकिन ध्यान रखना, आज से लेकर आगे भविष्य में भी कुछ दिन बाद भी, छह महीने या वर्ष बाद भी यदि किसी के यहाँ गजमोतियों का पता चल गया तो समझ लेना हाँ!.....बस!.....उसकी खैर नहीं है। उसको इतना कड़ा दंड दिया जायेगा कि उसकी खाल खींचकर उसमें भूसा भर दूँगा।"

उस समय महाराज मरुदत्त का चेहरा एकदम लाल सुर्ख हो रहा था और अधर ओंठ फड़क रहा था। फिर भी जैसे-तैसे महाराज ने अपने क्रोध को शांत किया और मन मसोस कर रह गये। वे आखिर कर भी क्या सकते थे? मंत्रीगण धीरे-धीरे क्षुब्ध वातावरण को शांत कर देते हैं और अन्य विषय की चर्चा छेड़ देते हैं। अनन्तर कुछ देर बाद सभा विसर्जित कर दी जाती है और सभी अपने-अपने घर आ जाते हैं।

सेठ हेमदत्त भी अपने घर पहुँचते हैं और अत्यन्त चिंता समुद्र में डूब जाते हैं। सोचते हैं, हाय! हाय यह क्या हुआ? हाय! मेरे मुख से हाँ क्यों नहीं निकला? मैंने भी सबके साथ में न क्यों कर दिया? मेरा कौन से कर्म का उदय आ गया? क्या मेरी जिन्दगी अब शेष नहीं है? ओह! चार-छह महीने बाद पुनः बहू आयेगी। वह गजमोती चढ़ायेगी। वह तो किसी भी हालत में नहीं मानेगी चूँकि उसका नियम है। जब उसने पहली बार में आकर तीन उपवास कर डाले तो पुनः उसे कैसे रोका जा सकता

है? अब क्या होगा?.....उसी समय सेठ जी अपनी बैठक में बैठ जाते हैं और तत्क्षण ही अपने बड़े छहों पुत्रों को बुला लेते हैं तथा किवाड़ बंद करके एकांत में मीटिंग करते हैं।

"बेटे धनदत्त! इस विषय पर तुम्हारा क्या अभिमत है? कहो, यह तो बहुत बड़ा धर्मसंकट आया हुआ है। अब मेरी तो कुछ बुद्धि काम नहीं करती है। बोलो बेटा! अब क्या करना होगा?"

"पूज्य पिता! आप इतने चिंतित क्यों हो रहे हैं? अरे! जब आपके हाथ में पूरी सत्ता है, हम सब आपके आदेश को पूर्णतया पालन करते आ रहे हैं और करते रहेंगे, आपका कोई पुत्र भी ऐसा नहीं है जो कि आपकी आज्ञा में मीन-मेख निकाल सके। पूज्यपाद! आप तो जो उचित समझिये सो आदेश दीजिए।"

"मैं तो किंकर्त्तव्यविमूढ़ हो रहा हूँ। बहू तो घर में आयेगी ही और गजमोती चढ़ायेगी ही। फिर क्या होगा.....?"

"पिताजी! क्या बहू का घर में आना जरूरी ही है?"

सेठ हेमदत्त एकदम चौंक उठते हैं-

"ऐं! बेटा! तुम यह क्या कह रहे हो? क्या बहू छोड़ दी जायेगी?"

"नहीं, नहीं, पिताजी!.....मैंने यह तो नहीं कहा कि बहू को छोड़ देना होगा या बुद्धिसेन की दूसरी शादी करनी होगी।"

"तो तुम्हारा क्या अभिप्राय है? कहो सो सही!"

"तात! मेरी समझ में तो यही आता है कि आप ऐसी दुर्घटना के प्रसंग में बुद्धिसेन को ही घर से निकाल दीजिए। न होगा बाँस न बजेगी बांसुरी। जब बुद्धिसेन ही घर में नहीं होगा तो बहू कैसे घर में आयेगी?"

धनदत्त अपने पाँचों भाइयों का मुख देखने लगते हैं और सभी

संकेत से स्वीकृति देकर उसी की बात का समर्थन कर देते हैं—

"ओहो! पिताजी! आपकी चिंता को समाप्त करने का और अपने ऊपर आने वाले संकट को दूर करने का भाई साहब ने कितना बढ़िया उपाय सोचा है। बस, बस, यही बात हम सबको जँच रही है। आपको यही आदेश दे देना चाहिए और बहुत ही जल्दी करना चाहिए। इसमें आपको कुछ भी आगा-पीछा नहीं सोचना चाहिए।"

सेठजी अपना माथा धुनने लगते हैं और उनकी आँखों से टपाटप आँसू टपकने लगते हैं—

"हाय हाय! यह क्या हो गया? बेटा! मेरे से ऐसा कार्य असंभव है। मैं इस निरपराधी सुकोमल सुकुमार बुद्धिसेन को कैसे घर से निकाल दूँ? भला उसने किसी का क्या बिगाड़ा है?"

सभी एक साथ बोल उठते हैं—

"तो ठीक है पिताजी! वह आपका लाडला है तो आप उसे न निकालिये। हम छहों भाई अपनी भार्याओं के साथ निकल जायेंगे। कोई चिंता की बात नहीं है, आप शान्ति की श्वास लीजिए। पिताजी! आपके अश्रु हम लोग देख नहीं सकते हैं, न तो जीवन में हमने कभी आपकी आँखों में पानी देखा था और न ही अब देखने का प्रसंग लाना चाहते हैं। बस आप धैर्य धारण करें। हम लोगों का यह अन्तिम निर्णय है।"

सेठजी एकदम विह्वल हो उठते हैं और पुत्रों को पकड़कर अपने वक्षस्थल से लगा लेते हैं—

"प्यारे पुत्रों! तुम लोग यह क्या बोल रहे हो? क्या तुम लोगों के चले जाने के बाद हमारी आँखों का पानी रुक जायेगा? क्या तुम्हारी माता अपने प्राण धारण रख सकेगी? उसकी क्या स्थिति होगी और मेरी

क्या गति होगी? तुम लोगों को भला कुछ तो सोचना चाहिए।"

धनदत्त, सोमदत्त आदि पुत्र पिता के वक्ष से अपने को अलग करते हैं और पुनः दीर्घ निःश्वास लेकर कुछ क्षण बाद बोलते हैं —

"पिताजी! इस समय आपके सामने अपने वंश की रक्षा का, अपनी सम्पत्ति की रक्षा का एक ही उपाय है कि या तो आप उस एक बुद्धिसेन को अपनी आँखों से ओझल करें या तो हम छहों को? इसके सिवाय अपने कुल की या अपने धन की रक्षा के लिए आपके पास कोई भी चारा नहीं है। आप स्वयं सोचें।"

सेठजी कुछ क्षण तक नाना ऊहापोहों में अपने आपको भूल जाते हैं पुनः सावधान हो अपने मोह को संवृत कर बुद्धिसेन को निकालने की बात सोचते हैं। पुत्रों के कहे अनुसार हाथ में कागज और लेखनी लेकर उसे घर से निकल जाने का आदेश लिखना चाहते हैं परन्तु कलम उनकी जहाँ की तहाँ स्थित है। वे मन ही मन विचार कर रहे हैं.....कहाँ से यह बहू आई जो कि डाकिन बन गई, हाय! वह तो मेरी आँखों के तारे को ही मुझसे जुदा कर रही है। कहाँ की इसकी प्रतिज्ञा है कि गजमोती चढ़ाना? यह भी कोई नियम है? बड़ी शहंशाह की पुत्री बनी है। ऐसा मालूम पड़ता है कि इसे अपने पिता की सम्पत्ति का बहुत बड़ा गर्व था कि जिससे इसने ऐसा नियम ले रखा है, बड़ी धर्मात्मा बनी हुई है।.....

सेठजी के मन में उस मनोवती के प्रति और उसकी प्रतिज्ञा के प्रति नाना प्रकार की अवहेलना के भाव उठ रहे हैं। वे पुनः एक बार अपने बड़े पुत्र धनदत्त की तरफ देखकर बोल उठते हैं —

"बेटा! अपने को यह कैसी पुत्रवधू मिल गई? और कैसी निराली इसकी प्रतिज्ञा है? जो कि आज हम सबको संकट में डालने के लिए

कारण बन रही है। यह भी कोई नियम है कि रोज ही गजमोतियों के पुंज चढ़ाना और फिर भोजन करना। क्या चावल के पुंजों से, नाना तरह के फलों से, फूलों से और अनेक प्रकार के सरस व्यंजन पकवान से, अष्ट द्रव्य के भरे हुए थालों से पूजा नहीं होती? भगवान् संतुष्ट नहीं होते? इसे क्या सूझी जो इसने ऐसी प्रतिज्ञा ले ली?"

"सचमुच में बात यही है। प्रतिज्ञा लेने का भी कोई तरीका होता है चाहे जो कुछ ले लिया। भला उसे यह भी तो सोचना चाहिए था कि जब मैं ससुराल जाऊँगी तो क्या होगा? जब उसे यहाँ गजमोती न मिलते तो? यदि घर में या अपने शहर में ही गजमोती न होते तो?.....क्या होता? कब तक भूखी रहती? वास्तव में लड़की निरी मूर्ख दिखती है और पापिनी भी। जभी तो उसके घर में पैर रखते ही ऐसी समस्या आकर खड़ी हो गई है। यह क्या घर को निहाल करेगी? यह तो सभी को मृत्यु के मुख में पहुँचाने के लिए साक्षात् कोई महामारी ही है या कोई चुड़ैल ही है जो कि बहू के रूप में आ गई है। इसका काम बहुत जल्दी खत्म करना होगा नहीं तो पता नहीं और भी क्या-क्या आपदाएं आ जावें?"

सेठजी बहू की प्रतिज्ञा की निन्दा तो कर डालते हैं किन्तु पुनः उसके भोले चेहरे को स्मरण में लाकर विह्वल हो उठते हैं। ओहो! वह कितनी भोली कन्या थी! साक्षात् देवी का ही तो रूप! क्या तो उसके नियम की दृढ़ता! ओह! यह मेरा छोटा पुत्र मुझसे एक मिनट को भी दूर हो तो कलेजा फटने लगता था और अब मैं इसे निकालकर घर में कैसे रहूँगा? हेमश्री के मन में क्या बीतेगी? अभी तो उसे कुछ पता नहीं है और यदि उसे पता चल जायेगा तो शायद उसको घर से निकालना शक्य नहीं होगा फिर क्या होगा? क्या सचमुच में ये छहों बेटे चले

जायेंगे? क्या ये सुपुत्र मेरी छाती पर वज्रप्रहार कर देंगे?.....सेठजी इन्हीं चिन्ताओं में डूबते-उतराते हुए हाथ में लेखनी लिये हैं। लिखना चाहते हैं किन्तु उनकी आँखों से वर्षा ऋतु के समान झड़ी लग जाती है। उन्हें कागज दिखता ही नहीं है। इसी बीच में धनदत्त ने पिता के हाथ से कागज और कलम छीन लिया और बोला-"पिताजी! लाइये, आपका आदेश मैं लिख देता हूँ।"

सेठजी बिलख-बिलख कर रोने लगते हैं और मन ही मन बहू की प्रतिज्ञा को कोसते हैं। धनदत्त पत्र लिखता है-

"प्रिय बुद्धिसेन! यदि तुम्हें पूज्य पिताजी के वचन मान्य हैं तो इस घर की देहली के अन्दर पैर नहीं रखना, वापस उल्टे पैर इस देश से बाहर चले जाना। आपके लिए यह पिता का आदेश है।"

धनदत्त ने धाय को आवाज देकर बुलाया और उसे वह कागज देकर कहा। जाओ! तुम दरवाजे पर बैठ जाओ! जब बुद्धिसेन आयेगा उसे यह कागज दे देना। कह देना कि पहले यह पत्र पढ़े और फिर अन्दर प्रवेश करे। धाय जाकर बैठ जाती है और बुद्धिसेन दुकान से घर आते हैं। धाय के हाथ से पत्र पाकर उसे पढ़ने लगते हैं। उसकी आँखों के सामने अंधेरा छा जाता है। वह एक बार सोचते हैं कि मैं नींद में तो नहीं हूँ? क्या ऐसा भी हो सकता है? मैंने भला क्या अपराध किया? पिताजी ने बचपन से लेकर आज तक मुझे कभी भी फटकारा तक नहीं, स्वप्न में भी गुस्सा नहीं किया और आज एकदम ऐसा क्रोध उन्हें मुझ पर क्यों आया कि जो देश से निकाल रहे हैं? आखिर रहस्य क्या है? उन्होंने मुझे कुछ दोष क्यों नहीं बताया?.....कुछ देर तक स्तब्ध खड़ा रहता है पुनः सोचता है अहो! छहों भाई कुशल व्यवसायी हो चुके

हैं इसलिए मुझे घर से निकाल रहे हैं अथवा.....मेरे ही कुछ अशुभ कर्म का उदय आ गया है इसमें किसी का क्या दोष? अब मुझे तो इस पत्र ने पिता से मिलने की, उनके चरण छूने की या माता से आशीर्वाद लेने की भी तो गुंजाइश नहीं दी है। अब मेरा कर्तव्य क्या है? मैं भूखा-प्यासा ऐसे ही किंकर्त्तव्यविमूढ़ हुआ यहाँ से शीघ्र ही चला जाऊँ और आज ही इस शहर की सरहद के बाहर हो जाऊँ। बस! बस! मेरा यही कर्तव्य है। क्या कुलीन मनुष्य कभी संकटों से घबराते हैं? क्या वे ऐसे समय में अपनी बुद्धि का, अपने भाग्य का सहारा नहीं लेते हैं?..... अब मैं भी अपने दैव की परीक्षा करूँ। आखिर देखूँ तो सही कि मैंने पूर्वजन्म में क्या-क्या किया है?.....

बुद्धिसेन उल्टे पैरों वापस लौट जाते हैं और इधर जब बहुत समय व्यतीत हो जाता है तब माता हेमश्री पुत्र के घर न आने से चिंतित हो उठती हैं। जैसे-तैसे करके उसे भी अंत में यह सारी रामायण सुना दी जाती है और वह पुत्र के वियोग में पागल हो उठती हैं। तत्क्षण मूर्च्छित हो जाती हैं। बहुयें उनको शीघ्र परिचर्या करके होश में लाती हैं। सेठजी स्वयं आकर पहले तो वे आप ही पुत्रवियोग से शून्यहृदय होते हुए रोने लगते हैं पुनः जैसे-तैसे अपने धैर्य को समेट कर शान्ति से बैठकर हेमश्री को सान्त्वना देते हैं।

"प्रिये! आप अब शोक दूर करो, जो होना था वह हो गया। अब यदि अपने भाग्य में होगा तो फिर इस जीवन में अपने को उसका मुख दिखेगा अन्यथा इन्हीं पुत्रों को देखकर संतप्त मन को शांत करो। वेदना मुझे भी है और अत्यधिक है परन्तु दैव के आगे किसी की कुछ भी नहीं चलती है।"

"स्वामिन्! आप जो भी कहते हैं सो सच है किन्तु मेरे साथ आपने इतना बड़ा धोखा क्यों किया? आपने मुझसे पहले बात क्यों नहीं की? मैं एक बार तो अपने प्यारे बेटे का ललाट चूम लेती। मैं एक बार उसे अपनी छाती से लगा लेती, फिर आप निकाल देते।"

"देवि! समस्या उस समय ऐसी ही थी कि यदि मैं जरा भी ढील कर देता तो ये छहों बेटे जाने को तैयार थे.....बस अब तुम धैर्य धारण करो।"

हेमश्री फूट-फूटकर रोती है। सेठ हेमदत्त बार-बार उसके आँसू पोछते हैं और दिलासा देते हैं। इसी बीच में धनदत्त आदि पुत्रों ने भी आकर माँ से कहा—

"माता! यदि तुम्हें बुद्धिसेन ही प्यारा है तो यह लो, हम लोग जाते हैं और उसे वापस भेजते हैं।"

"पुत्रों! तुम ऐसा क्यों बक रहे हो? मेरे लिए तो जैसे वह, वैसे ही तुम सब। मैंने तो जैसे तुम्हें नव-नव महीने पेट में धारण किया, जन्म दिया और लाड़-प्यार किया, वैसे ही तो उसको नव महीने उदर में रखा और जन्म दिया है किन्तु तुम्हीं बताओ अब मैं कैसे धैर्य धरूँ? मेरा तो कलेजा फटा जा रहा है। हाय! हाय! मैं कैसे अपने प्राण धारण करूँ?"

हेमश्री पुनः बेहोश हो जाती है और सभी पुत्र रो पड़ते हैं—

हाय!हाय! यह क्या हुआ?-हम लोग भी कैसे भाई का वियोग सहन करेंगे? जब उसकी बाल चेष्टाएं हमारे सामने खेलेंगी तो हम उसका मुख कैसे देख सकेंगे? वह सुकोमल शरीर बुद्धिसेन कहाँ जायेगा? कहाँ भटकेगा? क्या खायेगा? क्या पियेगा? कहाँ सोयेगा? अपनी जिंदगी कैसे बितायेगा? उसे भी जब माँ-बाप की, भाइयों की याद आयेगी तो क्या करेगा?.....

कुछ क्षण के लिए घर में शोकसमुद्र उमड़ पड़ता है पुनः धीरे-धीरे कर्म सिद्धान्त को सोच-सोचकर सब एक-दूसरे को समझाते हैं। माता! प्रत्येक प्राणी अपने कर्म के अधीन है। फिर वह तो पुरुष है, विवेकशील है, कुशल है, जहाँ कहीं भी जायेगा कुछ न कुछ व्यवसाय करके अपनी गृहस्थी बना लेगा। अब छोड़ो उसकी चिंता। सभी जीव अपने-अपने भाग्य के अधीन हैं। कोई भी किसी का करने-धरने वाला नहीं है। अपने प्राणों की रक्षा का, धन की रक्षा का बहुत बड़ा प्रश्न सामने उपस्थित होने से ही ऐसा कठोर निर्णय लेना पड़ा है पिताजी को। क्या किया जाये? अन्य कोई चारा भी तो नहीं था। इसी तरह से सभी एक-दूसरे को समझाते हुए संतोष की सांस लेते हैं फिर भी कुछ दिनों तक बुद्धिसेन की याद सबको सताती रहती है और मन मसोस कर तथा मनोवती की प्रतिज्ञा को कोसकर रह जाया करते हैं, दिन निकलते जा रहे हैं।.....

(४)

मन में विचार तरंगें तरंगित हो रही हैं और पैर उन्हीं तरंगों के सहारे आगे बढ़ते जा रहे हैं। मानों वे विचारलहरों के समान चलना ही जानते हैं, रुकना नहीं। सचमुच में दैव की लीला बड़ी विचित्र है, एक क्षण में क्या से क्या हो गया? और बल्लभपुर की यह वायु भी तो मेरे अनुकूल चल रही है, हो सकता है कि यह बहुत शीघ्र ही मुझे शहर की सीमा के बाहर निकालना चाह रही हो अथवा.....हो सकता है कि यह मेरे पथ में सहचारिणी बन रही हो अथवा हो सकता है कि यह मेरे वियोग से संतप्त होकर ही मेरे पीछे-पीछे भागी चली आ रही हो कौन जाने? कुछ भी हो, पीछे से चलती हुई वायु तो मुझे जल्दी-जल्दी चलने की ही

प्रेरणा दे रही है यदि यही वायु आगे होकर बहती तो मुझे मार्ग में चलने में बाधा अवश्य डाल देती।

शहर से बाहर कुछ दूर निकल जाने के बाद सुन्दर-सुन्दर बगीचे दिखते हैं। मानों वे कुमार से कहते हैं कि ठहरो-ठहरो! एक रात्रि हमारे यहाँ विश्राम कर लो किन्तु विश्राम का क्या काम? चलना है बस चलते ही रहना है नींद का काम नहीं, ठहरने का नाम नहीं। बुद्धिसेन जब अवंती देश की हद को पार कर जाते हैं तो आगे बढ़ते हैं। सामने अहीर की बस्ती है, चारों तरफ गायों के झुंड के झुंड दिख रहे हैं। प्रत्यूष बेला हो चली है। मन्द सुगन्ध हवा बह रही है। किसान हल लेकर खेतों की ओर चले जा रहे हैं, ग्वाल लोग गायों के थन से दूध निकाल रहे हैं। बछड़े माँ का दूध पी-पीकर रंभा रहे हैं। ग्वालिन अपने सिर पर दही के घड़े को रखे हुए निकली और वह बुद्धिसेन के सामने आ खड़ी हुई। वह युवक को सिर से पैर तक बार-बार देखती है और सोचती है यह तो कोई राजकुमार है या देवकुमार या कोई जौहरियों का पुत्र है? कौन है? यह पैदल ही क्यों चला जा रहा है? इसको कहाँ जाना है? इसका गन्तव्य कहाँ है? आखिर को वह पूछ बैठती है—

"भाई! आप कौन हैं? और कहाँ जा रहे हैं?"

कुमार बुद्धिसेन के पैर रुक जाते हैं उनकी विचार तरंगें वहीं पर टकराकर ठहर जाती हैं। वे स्वयं सोचते हैं-मैं कहाँ आ गया? यह गाँव कौन सा है? अब मुझे किधर जाना है? कहाँ जाना है? और क्या करना है? रात्रि भर चलते-चलते थका हुआ शरीर है, पैर भी जवाब देने लगे। तब कुमार वहीं पर एक वृक्ष के नीचे बैठ जाते हैं और उस ग्वालिन की तरफ देखकर उसके प्रश्न को सुना-अनसुना कर देते हैं। फिर भी वह

महिला कहने लगी—आप बहुत थके हैं। आज इसी गांव में आराम कीजिए। मालिक! यह गाँव आपका ही है। पुनः वह आगे बढ़ जाती है। सामने बगीचों में मयूर नाच रहे हैं। एक मयूर आकर बुद्धिसेन के सामने भी अपने पूरे पंखों को फैलाकर नाचने लगा। ओहो! आज से एक सप्ताह पहले जब मैं हस्तिनापुर शहर में दूल्हा बनकर ब्याहने गया था बारात में हजारों जौहरी थे। रथों की, हाथियों की, घोड़ों की, पालकियों की कोई गणना नहीं थी। उस समय मेरा भी मन मयूर ऐसे ही नाच रहा था और आज चिन्तारूपी रत्नाकर में गोते लगा रहा है। उसी समय गाँव के प्रसिद्ध पटेल ने देखा कि यह कोई युवक राजकुल का हो या उत्तम वैश्यकुल का, निश्चित ही यह पुण्यपुरुष है किन्तु भाग्य ने ही शायद इसे धोखा दिया है। चलो कुछ भी हो, अपने गाँव में आये मेहमान की खातिरदारी करना अपना परम कर्तव्य है। वह कुमार को अपने साथ ले जाकर आतिथ्य सत्कार करता है।

कुमार मन में सोच रहे हैं कि मेरी शादी हुए कुल सात-आठ दिन हुए हैं। मेरी धर्मपत्नी मनोवती पतिव्रता महिला है। यदि उसे यह समाचार मिलेगा कि मेरे पति को घर से निकाल दिया और वे कहीं चले गये हैं तो उसके मन पर क्या बीतेगी? अकस्मात् दुःखी होकर यदि वह आत्मघात कर ले तो क्या होगा?" मेरा कर्तव्य है कि कहीं व्यापार के लिए जाने के पहले हस्तिनापुर जाकर उसे सारी घटना सुना दूँ और सान्त्वना देकर अन्यत्र कहीं दूर देश में जाकर उत्तम व्यवसाय करके पुनः उसे वहीं पर लिवा लाऊँगा.....।"

"पटेलजी! हस्तिनापुर का मार्ग किधर से जाता है?"

पटेलजी सही रास्ते का दिग्दर्शन कराते हुए—

"बन्धु! मार्ग तो इधर से जाता है। आप कुछ दिन यहाँ ठहरें तो अच्छा है।"

"मुझे जल्दी ही हस्तिनापुर पहुँचना है।"

बुद्धिसेन निकल पड़ते हैं और एक-एक फर्लांग पर बैठ-बैठकर जैसे-तैसे कुछ दिनों में रास्ता पारकर हस्तिनापुर के बाहर बगीचे में आ जाते हैं। सूर्य अस्ताचल को जा रहा है और अपनी मधुर लालिमा से दिशाओं को अपना अनुराग भरा प्यार समर्पित कर रात्रि भर के लिए विदाई ले ली है। प्रातः फिर वापस आने का आश्वासन भी दे गया है। इसी बीच में बुद्धिसेन भी हद से ज्यादा थके हुए थे। उनकी विचार सरणि भी तरणि के समान अस्ताचल को ढूंढने लगी। वे सोच रहे हैं कि अभी-अभी कुछ दिन ही हुए कि मैं यहाँ ब्याहने आया था तो कितना परिकर समूह साथ में था। राजशाही ठाठ से क्या कुछ कम ठाठ था? और आज मैं अकेला इस दुरवस्था से इस शहर में प्रवेश करूँ? ससुराल वाले क्या समझेंगे? क्या कहेंगे? क्या सोचेंगे? अपने माता-पिता का कितना बड़ा अपमान होगा?..... सोचते-सोचते कुमार विह्वल हो उठते हैं और अपने घर की इज्जत का, अपनी इज्जत का सबसे बड़ा सवाल सामने आकर उन्हें वापस चलने को बाध्य कर देता है। आखिर तो वह अन्तिम निर्णय में आ जाते हैं कि यहाँ से वापस जाकर धन कमाकर अपनी इज्जत की सुरक्षा रखते हुए ही यहाँ आना ऐसे नहीं! किन्तु श्रम सहचर के रूप में उन्हें जैसे-तैसे रात्रि भर वहीं बगीचे में सोने की सलाह देता है। लाचार होकर बुद्धिसेन को मानना ही पड़ता है।

उषा देवी कुमार को शुभ सूचना देने के लिए आना चाहती थी कि उसके पहले मालिन वहाँ आ जाती है और चमेली, बेला, जुही आदि के

सुन्दर-सुन्दर खिले हुए फूलों को चुन-चुन कर अपने टोकरे में रखती चली जाती है। वे फूल भी प्रसन्न होकर आपस में हँस रहे हैं क्योंकि उन्हें तो जिनेन्द्रदेव के सम्मुख पहुँचने का सौभाग्य मिलने वाला है। धीरे-धीरे मालिन उषा के अनुराग (लालिमा) के साथ-साथ बुद्धिसेन के पास पहुँच जाती है। बड़े गौर से निहारती है। ओहो! यह तो मेरे ही सेठजी का जंवाई है, अभी-अभी दस पन्द्रह दिन तो हुए ही हैं जब यह ब्याहने आया था.....। वह शीघ्र ही वहाँ से चल पड़ती है और आकर सेठ महारथ से कहती है।

"सेठजी! आपके जंवाई साहब आपके बगीचे में पधार गये हैं आप जल्दी जावो।"

"ऐं! क्या, क्या? बुद्धिसेन जी आये हैं?"

"हाँ, हाँ, सरकार, हाँ! वे ही हैं।"

ओहो! इस संसार में लक्ष्मी का कोई भरोसा नहीं है। अभी पन्द्रह दिन ही तो हुए हैं। क्या बात हुई? या तो चोरों ने धन लूट लिया होगा या राजा ने धन छीन लिया होगा, या तो और कोई संकट आया होगा। कुछ भी हो, कोटिध्वज के सुपुत्र मेरे जंवाई बुद्धिसेन कुमार हैं। उन्हें जल्दी से घर ले आना है। ऐसा सोचकर सेठजी तत्क्षण ही बगीचे में पहुँचकर उसका हाथ पकड़कर हिलाकर जगाते हैं और बड़े प्रेम से अपने वक्षस्थल से चिपका लेते हैं। घर में लिवा लाकर स्नान-भोजन आदि कराते हैं तथा घर में सभी महिलाओं को कड़ी सूचना दे देते हैं कि कोई भी स्त्री इनसे आने का कारण न पूछे।

फिर महिलाओं में कानाफूसी दिन भर चलती ही रहती है। आखिर को बिना बुलाये ससुराल आने का क्या कारण है? पैदल ही

क्यों आये? अकेले ही क्यों आये?.....

"बहन! ऐसा करो कि इनसे अपने में से यदि कोई पूछ लेगा, तब तो सेठजी बहुत ही क्रुद्ध होंगे अतः मनोवती को ही इनके पास भेज दो, वही सब कारण समझ लेगी और इससे सेठजी को भी गुस्सा नहीं आएगा।

"हाँ, हाँ! बहन, आपने बहुत बढ़िया उपाय सोच निकाला, चलो चलें, अपन पहले सेठानी जी को तो मना लें।"

"हूं, वे तो इस बात पर सहज ही राजी हो जावेंगी।"

"तो बस, उन्हीं की आज्ञा से आज रात्रि में मनोवती को कुंवर जी के पास भेज देवो, सारी स्थिति का स्पष्टीकरण हो जायेगा।

"ठीक, बहुत ठीक।"

रात्रि में मनोवती पतिदेव के निकट पहुँचती है, उन्हें प्रणाम करके शारीरिक कुशल क्षेम पूछती है और विनय से पास में बैठ जाती है। बुद्धिसेन भी पहले सामान्यतया 'सब ठीक है' ऐसा उत्तर देते हैं और कुछ क्षण को चुप हो जाते हैं। मनोवती पुनः धीरे-धीरे संकोच छोड़कर पति के सम्मुख हाथ जोड़कर पूछती है —

"प्राणनाथ! आज अकस्मात् आपका शुभागमन कैसे हुआ?.....कृपया मुझे बताकर मेरे मन को हल्का कीजिए।"

"प्रिये! कर्मों की गति बड़ी विचित्र है, अब घर में मेरे छहों भाई अच्छे कुशल व्यवसायी हो गये हैं अतः शायद उन्हें मेरी आवश्यकता नहीं महसूस हुई होगी, हो सकता है इसी कारण से पिता ने मुझे देश से निकाल दिया हो। सही कारण क्या है सो मुझे भी मालूम नहीं है? हाँ, मेरा ऐसा अनुमान है हो सकता है कि यह गलत भी हो? अन्य ही कुछ कारण हो?"

मनोवती को पतिदेव के मुख से देश निर्वासन का समाचार सुनकर इतना दुख नहीं हुआ कि जितना दुःख पति के मुखकमल की उदासीनता से हुआ, उसका हृदय एकदम विदीर्ण हो उठा। वह कुछ क्षण स्तब्ध सी रही। पति के मुख की तरफ एकटक देखती रही। अनंतर उसने साहस बटोरकर कहा —

"स्वामिन्! आपके सामने तो मेरे में कुछ भी बुद्धि नहीं है फिर भी मैं अपनी तुच्छ बुद्धि से ही कुछ निवेदन करना चाहती हूँ यदि आपकी आज्ञा हो तो कुछ शब्द कहूँ?"

बुद्धिसेन उसके शब्दों को सुनने की उत्सुकता से ही सम्मति देते हुए गंभीर मुद्रा में हो जाते हैं और मनोवती कहना प्रारंभ करती है —

"देव! आप पुरुष हैं, आपको चिंता किस बात की? अपने पुरुषार्थ के बल पर मनुष्य जब बड़े-बड़े कार्य कर सकता है, तब अपना गार्हस्थ्य जीवन बनाना क्या कोई बड़ी बात है? आप बिल्कुल निश्चिन्त होइये और अपने पुरुषार्थ से अपने सुखद भविष्य का निर्माण कीजिए।"

"सो तो मेरा निर्णय ही है,मैं तो केवल यहाँ तुम्हें सूचित करने मात्र ही आया हूँ। अब मैं कहीं दूर देश में जाकर धन अर्जन करके वापस आकर तुम्हें ले जाऊँगा, तब तक तुम यहीं पीहर में सुख से रहो।"

इस बात को सुनते ही मनोवती का साहसी हृदय भी आहत हो गया। वह विह्वल हो उठी, आश्चर्य भरी दृष्टि से पति के मुख को देखते हुए बोलती है —

"आप यह क्या कह रहे हैं? यह अघटित बात सर्वथा असंभव है। आप यहीं हस्तिनापुर में रहिए। मेरे पिता जी के यहाँ सम्पत्ति की कोई कमी नहीं है। उनसे कुछ धन लेकर आप व्यापार कीजिए।"

"प्रिये! यह संभव नहीं है। मैं ससुराल में रहकर अपने माता-पिता के नाम को नहीं लजाना चाहता, मैं ससुर से धन लेकर व्यापार करके अपनी उन्नति नहीं करना चाहता, मैं अन्यत्र कहीं जाकर धनार्जन करूँगा। यहाँ किसी भी हालत में नहीं रुकुँगा।"

"आपका इतना कोमल शरीर है कि तीन-चार दिन में तो क्या स्थिति हुई है? आप धूप और छाया के कष्टों को परदेश में कैसे सहन करेंगे? स्वामिन्! मेरे तुच्छ निवेदन को स्वीकार कीजिए और यहीं पर व्यापार करने की सोचिये।"

"प्रियतमे! केवल तुम्हारे मोह से खिंचकर मैं इधर आया हूँ बस तुम्हें जानकारी देना मेरा एकमात्र लक्ष्य था। अब तुम सभी बातें छोड़कर मुझे दूर देश में जाने की स्वीकृति देवो, जिससे मेरे मन में अशांति न रहे।"

जब मनोवती ने समझ लिया कि ये यहाँ नहीं रुकेंगे, तब वह धैर्य के साथ बोलती है—

"प्राणनाथ! यदि आपका निर्णय सर्वथा यही है कि यहाँ नहीं रहना, तब तो मुझे भी आप अपने साथ ले चलिये।"

"वाह! यह भी कोई बात है। मैं वन-वन में रास्ते-रास्ते में भटकते हुए न जाने कब कहीं पर स्थित हो पाऊँ? आज यहाँ कल कहाँ? फिर मैं तुम्हें कहाँ-कहाँ साथ लिए फिरूँगा? और फिर प्रवास के कष्टों को झेलना क्या कोई आसान बात है? तुम भूख-प्यास की बाधाओं को, ठंडी, गर्मी के सभी कष्टों को कैसे सहन कर सकोगी?"

"और आप कैसे सहन करेंगे?"

"पुरुषों में और महिलाओं में बहुत अन्तर है।"

"यह कोई बात नहीं है कभी-कभी पुरुषों की अपेक्षा से अधिक संकट महिलाएं हँसते-हँसते झेल लेती हैं। स्वामिन्! मैंने बचपन में दिगम्बर मुनि के मुख से शिक्षा पाई, छह महीने तक गुरुदेव के चरण सानिध्य में रहकर मैंने सभी विद्यायें सीखी हैं मुझे अपने कर्त्तव्य-अकर्त्तव्य का पूरा ज्ञान है, आप प्रवास में नाना प्रकार के कष्ट उठायें और मैं सुख से पीहर में रहूँ? ओह!..... असंभव है, ऐसा कभी नहीं हो सकता.....कभी नहीं हो सकता। मैं भी आपके मार्ग के कंटकों को दूर करते हुए सती सीता के समान आपके साथ चलूँगी।"

"नहीं, नहीं! प्रिये! तुम बिल्कुल मत सोचो। अपना विचार बदलो और मेरे प्रस्थान में विघ्न मत बनो।"

"मैं कभी भी अपने विचार नहीं बदल सकती, साथ ही चलूँगी।"

"देखो, प्रियतमे! यह हठ सर्वथा अनुचित है।"

"आप कुछ भी कहें किन्तु मुझे तो यही उचित लगता है अतः मैं आपके पथ का अनुसरण करूँगी।"

"मैं आपको साथ ले चलने के लिए किसी भी हालत में तैयार नहीं हूँ।"

"जैसी आपकी इच्छा!.....परन्तु आप यह बात निश्चित समझ लीजिए कि आपके यहाँ से प्रस्थान करते ही मैं अपघात करके इस जीवन को समाप्त कर दूँगी।"

बुद्धिसेन सहसा चौंक पड़ते हैं—

"ओह!.....प्रिये! तुम क्या कह रही हो? क्या इस तरह प्राण त्याग करना तुम्हारा कर्त्तव्य है? तुम्हें ऐसे संकट के समय धैर्य धारण करना चाहिए और आगे के अच्छे दिनों की प्रतीक्षा करनी चाहिए।"

मनोवती अधिक न बोलकर घबरा कर रोने लगती है और बुद्धिसेन उसे हर तरह से समझाने का प्रयत्न करते हैं। अन्त में मनोवती यही कहती है कि मैं आपके बिना इस घर में एक दिन भी जीवित नहीं रहूँगी। तब कुमार कुछ ढीले पड़ जाते हैं—

"तो ठीक है, यदि आपको चलना ही है तो मेरी आज्ञा का पालन करो। ये रत्नों के, मोतियों के आभूषण एक-एक उतारकर यहीं छोड़ दो। अन्यथा लोग कहेंगे कि देखो! कैसा ठग आया था कि जो तमाम रत्नों के जेवर ले गया.....हाँ फिर जल्दी करो।"

मनोवती प्रसन्नता से गद्‌गद हो उठती है और तत्क्षण ही जल्दी-जल्दी सारे आभूषण उतारकर वहीं पलंग पर डाल देती है। गजमोतियों का हार खींच कर उतार फेंकती है कि जिससे उसके मोती बिखर जाते हैं और वहीं पलंग पर एक-दूसरे के पास आते-जाते हुए ऐसे दिखते हैं कि मानों इन्हें भी अपने इष्ट (साथियों) का विरह इष्ट नहीं है इसलिए सब एक जगह एकत्रित हो जाते हैं। भुजबंद, कंकड़, अंगूठी, स्वर्ण की करधनी आदि सभी आभूषण उतारने के बाद उसने कहा-

"प्राणनाथ! आप देखिये अब मेरे पास कुछ भी आभूषण नहीं है।"

बुद्धिसेन भी दृष्टि से देखते हैं कि इसने सर्व अलंकार दूर कर दिये हैं। मात्र गले में एक मंगलसूत्र है जो कि सौभाग्य का चिन्ह है, वही रह गया है। बस आधी रात का समय था। वे दोनों शीघ्र ही खिड़की के रास्ते से निकल कर हस्तिनापुर से बाहर जाने की सड़क पकड़ लेते हैं। मनोवती भी प्रसन्नमना महामंत्र का जाप्य करते हुए पतिदेव के पीछे-पीछे चली जा रही है।

(५)

जो हमेशा हाथी पर चढ़कर प्रस्थान करते थे, जो सुकुमारांगी महिला पालकी में या रथ पर बैठकर ही बगीचे की सैर के लिए निकलती थी, आज वे दम्पत्ति बड़े प्रेम से नंगे पैर काँटों और कंकड़ों की परवाह न करते हुए चलते चले जा रहे हैं मार्ग में छोटे-छोटे गाँव आते हैं। ग्रामीण जन इन्हें देखकर सोचने लगते हैं। ये युगल दम्पत्ति कौन हैं? क्या महादेव ही पार्वती को साथ लेकर विश्व की यात्रा के लिए निकले हैं या श्रीकृष्ण भगवान् अपनी लक्ष्मी के साथ विचरण कर रहे हैं? इनका रूप कितना सुन्दर है, क्या ये स्वर्ग से उतरते हुए कोई देव दम्पत्ति हैं? या कोई राजवंश के भावी होनहार हैं? लोग मार्ग में कुतूहल से आकर घेर लेते हैं और परिचय पूछने लगते हैं, तब कुमार बुद्धिसेन मुस्करा देते हैं और आगे बढ़ जाते हैं।

आज एक दिन व्यतीत हो चुका है, रात्रि भी निकलती चली जा रही है। कब अर्द्धरात्रि आई और कब चली गई पता ही नहीं है। क्योंकि चलना, चलते चलना ही अपना लक्ष्य है। गंतव्य स्थान क्या है? कहाँ पहुँचना है? कौन जाने? दो दिन निकल गये, दो रात्रि व्यतीत हो गईं, आज तीसरा दिन है। शरीर में पूरी थकान है। मनोवती कभी मन में महामंत्र का जाप्य करती है, कभी मुनिराज के धर्मोपदेश का स्मरण करती है, तो कभी पतिदेव के समक्ष उन शिक्षाओं को सुनाने लगती है कि जो उसे बचपन में मुनिराज के मुखकमल से सुनने को मिली थीं। आज चौथा दिवस है दोनों ही रतनपुर के सुन्दर बगीचे में पहुँचे हैं। ठंडी-ठंडी हवा दोनों की थकान को दूर करते हुए उन्हें मानों वहीं बैठने

की प्रेरणा दे रही है। बगीचे की सुन्दरता को देखकर और पथिक से शहर का नाम ज्ञात कर कुमार वहीं पर ठहर जाते हैं।

"स्वामिन्! यह अशोक वृक्ष की छाया जिनशासन के समान सुखदायी प्रतीत हो रही है, यह देखो! सामने आम्रवृक्ष अपने फलों के भार से झुक गया है। मानो वह गर्वत्याग की सूचना ही दे रहा है और इधर यह एरण्ड वृक्ष सीना तान कर उद्दण्ड मनुष्य के समान खड़ा है परन्तु छाया से शून्य है। एक तरफ सरोवर में कमल खिल रहे हैं, उन पर भ्रमर गुंजार कर रहे हैं। इधर चमेली और जुही की लता फूलों से महक रही है।"

"मुझे तीन दिन-रात्रि के प्रवास की पूरी थकान थी। मैं सोच रहा था इस समय आपकी क्या स्थिति होगी? किन्तु आपका धैर्य वास्तव में सराहनीय है।"

मनोवती पतिदेव के पैर दबाने लगती है और विश्रांति के लिए प्रार्थना करती है। बुद्धिसेन को कुछ नींद आ जाती है। तब धीरे से उठकर मनोवती पास के सरोवर में स्नान करके अपने कपड़े सुखाने लगती है और केशों को भी खोलकर सुखाने लगती है। उसी समय केशों में कहीं पर एक बेशकीमती रत्न उलझा हुआ था, वह उसके हाथ में आ जाता है वह उसे देखने लगती है, इतने में बुद्धिसेन उठकर बैठ जाते हैं। मनोवती पास में आकर बोलती है —

"स्वामिन्! आज तीन दिन हो गये आपको, न भोजन है न पानी। आपका मुखकमल बिल्कुल मुरझा गया है। अब.....

बीच में ही बात काटकर बुद्धिसेन बोल उठते हैं —

"और आपका मुखकमल क्या खिल रहा है? वह तो मेरे से भी

अधिक कुम्हला गया है।"

फिर गंभीर मुद्रा में होकर बोलते हैं —

"सचमुच में बिना अन्न-जल के इस शरीर की स्थिति अधिक नहीं रह सकती है। अभी तो शरीर से सर्वथा निर्मम ऐसे योगी भी शरीर की स्थिति के लिए आहारार्थ नगरों में, श्रावकों के गृहों में विचरण करते हैं।

"सच है शरीर के बिना धर्म की साधना भी तो असंभव है। इसलिए तो तीर्थंकरों ने स्वयं आहार ग्रहण किया है और अन्य मुनियों के लिए निर्दोष आहार ग्रहण करने का उपदेश दिया है।"

कुछ क्षण वातावरण शांत रहता है पुनः मनोवती बोलती है- "पतिदेव! यह देखिये, मेरे केशों में यह एक नग उलझा हुआ था, वह धोखे से ही आ गया है। मेरी समझ में अब आप इसे लेकर शहर में जाइये और किसी के यहाँ गिरवी रखकर उसके बदले कुछ धन लेकर भोजन की सामग्री लाइये।"

बुद्धिसेन वह नग लेकर चुपचाप चले जाते हैं और कुछ देर बाद भोजन सामग्री लाकर दे देते हैं। मनोवती अपनी कुशलता से बगीचे में बाँस के बर्तन और पत्तों के दोने बनाकर भोजन-सामग्री तैयार करती है। बुद्धिसेन भोजन आदि से निवृत्त होते हैं। मनोवती पतिदेव को भोजन कराती है।

आज पहली बार बगीचे में उसने अपने पतिदेव को जिमाया है। वह मन ही मन प्रसन्न है। फिर पतिदेव से निवेदन करती है कि आप शहर में जाइए। कुछ अपने व्यापार-धंधे का सिलसिला जमाइये। इधर आप पति को शहर भेजकर अपने हिस्से का भोजन भूखों को जिमा देती है और स्वयं बैठकर महामंत्र का जाप्य करती है।

शाम होते ही पतिदेव आ जाते हैं किन्तु कुछ सफलता उन्हें नहीं मिलती है। मन में उदासीनता होते हुए भी बुद्धिसेन पत्नी से दिन भर की कुशलता को पूछकर बैठ जाते हैं। मनोवती भी हास्य विनोद में पति की निराशता और थकान को समाप्त कर देती है।.....दूसरे दिन फिर मनोवती ने पति को जिमा दिया और आप अपने हिस्से का भोजन गरीबों को खिला दिया। ऐसे ही तीसरा दिन भी व्यतीत हो गया।

बुद्धिसेन ने देखा, मनोवती का शरीर अत्यन्त शिथिल हो गया है, मुख बहुत ही म्लान है। मन में सोचने लगा। हाय! देखो! दुर्दैव की लीला, यह कुमारी मेरे साथ इस प्रवास में एकदम कैसी सूख गई है। अब क्या होगा? यह कैसे जीवित रह सकेगी?.....

"प्रियतमे! तुम्हारा मुख अत्यन्त म्लान हो चुका है, शरीर भी बिल्कुल सूख गया है। तुम मुझे तो अच्छी-अच्छी शिक्षाएँ देती हो और स्वयं तुम्हें क्या हो गया है? तुम मार्ग में चलने में इतनी कमजोर नहीं दिख रही थीं कि अभी जितनी दिख रही हो। क्या कारण है सो कहो?

मनोवती बात को पलटकर हँसते हुए बोली —

"स्वामिन् ! आपको स्वयं व्यापार में सफलता न मिलने से ही दिखता है कि चिन्ता अधिक हो रही है और इसलिए शायद आप मुझे कमजोर देख रहे हैं।"

"नहीं, नहीं! ऐसी बात नहीं है, क्या तुम्हें शरीर में कोई कष्ट है? कहो! सच सच कहो।"

"नहीं स्वामिन! कुछ भी कष्ट नहीं है केवल आपको भ्रममात्र है। मैं स्वस्थ हूँ। हाँ, मन की अस्वस्थता से कुछ शरीर में फर्क आ जावे तो मैं क्या करूँ?"

"आप मुझसे कुछ छिपा रही हैं?"

"नहीं, नहीं स्वामिन्! मैं आपसे क्या छिपाऊँगी? आप निश्चिंत रहें कोई खास बात नहीं है।"

बुद्धिसेन बेचारा मनोवती की शारीरिक स्थिति को देखकर आश्चर्य में है कि आखिर बात क्या है? अंत में वह चुप हो जाते हैं और भाग्य के विषय में सोचते-सोचते उनके नेत्र सजल हो जाते हैं। कुछ क्षण माता-पिता की निष्ठुरता पर क्रोधित होते हैं तो पुनः अपने भाग्य की निष्ठुरता को कोसते हैं। धीरे-धीरे नींद आ जाती है। रात्रि व्यतीत हो जाती है। रोज की तरह आज पुनः सूर्य निकलता है। बुद्धिसेन स्नान आदि से निवृत्त होकर शहर में व्यापार करने के लिए चले जाते हैं।

मनोवती की स्थिति वास्तव में गंभीर है। हस्तिनापुर से निकलकर मार्ग में चार दिन व्यतीत हुए। अब यहाँ रतनपुर के बगीचे में तीन दिन बीत चुके हैं। बिना अन्न के, बिना पानी के सात दिन निकल चुके हैं। अब मनोवती मन में सोच रही है। मैं क्या करूँ? यदि पति से कुछ कहूँ तो उन्हें सिवाय चिन्ता के और क्या होगा? वे यही कहेंगे कि तुम मेरे साथ क्यों आई? उन्हें गजमोती कहाँ मिलेगा वे स्वयं जिस स्थिति में हैं तो मेरे नियम को कैसे पूर्ण करेंगे? अब मेरा शरीर कितने दिन टिक सकेगा? क्या होगा?

"भगवन्! आपके सिवाय अब मेरा यहाँ कोई भी रक्षक नहीं है। मेरे दुर्दैव ने ही तो मेरे पति को घर से निकाल दिया है। नहीं तो वहाँ क्या कमी थी? हे जिनेन्द्रदेव! अब आपके सिवाय मुझे किसी की भी शरण नहीं है। एक मात्र अकारण बंधु आप ही मेरे प्रभु हैं। हे त्रैलोक्यनाथ! जब-जब भक्तों पर संकट आया है, तब-तब आपने ही तो उनकी रक्षा की है।"

मनोवती मन ही मन भगवान् से प्रार्थना कर रही है। उसका यह निश्चय है कि भले ही प्राण चले जायें, लेकिन अपनी प्रतिज्ञा भंग नहीं करना। उसे विश्वास भी है कि अनाथों के नाथ भक्तों के रक्षक भगवान् मुझ पर कृपा अवश्य करेंगे। किसी न किसी प्रकार से कुछ न कुछ उपाय अवश्य दिखेगा और जब मेरी प्रतिज्ञा पूरी होगी, मैं श्री जिनेन्द्रदेव के सन्मुख गजमोतियों को चढ़ाऊँगी, तभी भोजन करूँगी अन्यथा नहीं।

मनोवती पुनः भगवान् से प्रार्थना करती है—

"प्रभो! जब आपकी भक्ति के प्रसाद से अनन्तानन्त संसार की परम्परा समाप्त हो जाती है, जब आपकी भक्ति के प्रसाद से सम्पूर्ण कर्म जड़मूल से निर्मूल हो जाते हैं, जब आपकी भक्ति से सम्पूर्ण मनोरथ सफल हो जाते हैं, देवाधिदेव! जब आपकी भक्ति से कल्याण परम्पराएं अपने आप दौड़ती-चली जाती हैं, जब आपकी भक्ति से बड़े-बड़े विघ्नकर्म चूर-चूर हो जाते हैं, तब पुनः मेरी भी प्रतिज्ञा क्यों नहीं पूर्ण होगी? क्या मेरे हृदय में सच्ची भक्ति नहीं है?.....प्रार्थना करते-करते मनोवती कुछ क्षण के लिए ध्यान में एकाग्र हो जाती है.....।

कुछ देर बाद एकदम उसका पैर नीचे को धंसता है। वह चौंक उठती है। पैर की तरफ देखती है तो एक शिला है जो कि एकदम नीचे खिसक रही है। वह धीरे से उस शिला को उठाती है तो उसको सीढ़ियाँ दिखती हैं वह धीरे-धीरे नीचे उतर जाती है।

अहा हा!! यह विशाल जिनमंदिर! चारों तरफ रत्नों की जगमगाहट! वह हर्ष विभोर हो जय-जयकार करने लगी-णमो अरिहंताणं.....।

.....ऐसा मंदिर आज तक मैंने देखा ही नहीं है! क्या दिव्य सजावट? क्या दिव्य जिनेन्द्रदेव की रत्नमयी प्रतिमा? सिंहासन, छत्र

चामर आदि दिव्य विभूतियाँ! चन्द्रोपक तोरण रत्नों की चकचकाहट! एक से एक बढ़कर चित्रकला! भक्ति में तन्मय हो प्रभु का दर्शन करती है। पुनः मन में सोचती है कि मैं स्नान करके पूजा कर लेती कि उसी समय उसकी दृष्टि एक तरफ पड़ती है। जहाँ धौतवस्त्र हैं। जल से भरे हुए घड़े रखे हैं। वह स्नान करके शुद्ध वस्त्र धारण कर प्रभु का अभिषेक पूजन करना चाहती है तो उसे गजमोती कहीं नहीं दिख रहे हैं। वह सोचने लगी कि जब तक मैं गजमोती नहीं चढ़ाऊँगी, तब तक मेरी पूजा अधूरी ही तो रहेगी.....।

सामने दृष्टि डालते ही गजमोतियों का ढेर लगा हुआ है। हर्ष में नाच उठती है। नाना प्रकार से स्तुतियों का उच्चारण करते हुए त्रिभुवनपति जिनेश्वर की अभिषेक-पूजाविधि करके गजमोतियों को मनमाने चढ़ाकर अपने जीवन को कृतार्थ कर लेती है। वह समझती है कि बस आज ही तो मेरा जन्म लेना सार्थक हुआ है, आज मैं धन्य हो गई, पवित्र हो गई। मेरी स्त्रीपर्याय से छूटने का सर्वोत्तम कारण और साक्षात् मुक्ति को प्राप्त करने का मूल कारण सम्यग्दर्शनरूपी महारत्न मुझे मिल गया है।

स्तुति —

चाल-हे दीनबन्धु.....

जय जय प्रभो जिनदेव! आप दर्श मिल गये।
जय जय प्रभो जिनदेव! पाप सर्व धुल गये।।
तुम दर्श से सम्यक्त्व ज्योति जगमगा उठी।
निजात्मज्ञान ज्योति भी तो चकचका उठी।।१।।

हे नाथ! मैं गजमोतियों के पुँज चढ़ाऊँ।
करके प्रतिज्ञा पूर्ण सर्व सिद्धि को पाऊँ।।
तुम पादपद्म भक्ति में ही लीन हो जाऊँ।
फिर बार-बार मैं नहीं संसार में आऊँ।।२।।
प्रभु आपकी कृपा से मैं निहाल हो गई।
ये दर्श की महिमा भी एक मिशाल हो गई।।
जब तक न मिले मुक्ति ये ही दान दीजिए।
तब तक रहे तुम भक्ति ये वरदान दीजिए।।३।।

पुनः मनोवती को उसी जीने से वापस आते समय दो मोती दिखते हैं उन्हें वह उठाकर हाथ में लेकर शिला उठाकर ऊपर आ जाती है और शिला वापस ढक देती है। कुछ क्षण वहीं बैठकर पतिदेव की प्रतीक्षा करती है। इतने में कुमार बुद्धिसेन आते हैं। वह उठकर स्वागत करती है और विनम्र शब्दों में बोलती है—

'स्वामिन्! अब शीघ्र ही भोजन सामग्री लाइये। मुझे भूख लग रही है। बुद्धिसेन तत्क्षण उल्टे पैर मुड़ जाते हैं। अहो! क्या कारण है कुछ समझ में नहीं आ रहा है? मेरी प्राणों से प्यारी भार्या का मुख पीला हो रहा है, शरीर यष्टि शिथिल हो चुकी है, आँखें अंदर को धँसी जा रही हैं। क्या चिंता से ही इतनी दुर्बलता आयी है या किसी व्याधि ने घेर लिया है? क्या बात है?.....दीर्घ निःश्वास लेते हैं.....। अरे दुर्दैव! तू बड़ा ही निष्ठुर है। आज यहाँ रतनपुर में भी मुझे आये चार दिन हो गये, कुछ भी ठिकाना नहीं है।

.....कुछ देर बाद कुमार ने चावल, दाल, मसाला, साग-सब्जी आदि सामान मनोवती के सामने रख दिया। उसने भोजन तैयार

किया, पतिदेव को जिमाया और पुनः आप भोजन किया।

ओहो! आज आठवां दिन है। सात दिन तक उपवास करके आठवें दिन अपनी प्रतिज्ञा को निभाने के लिए देवों के आसन हिला दिये। धन्य है यह प्रतिज्ञा! और धन्य है यह दृढ़ता! धन्य है धैर्य और धन्य है साहस! जिसकी प्रतिज्ञा पूर्ति के लिए देवगण भी कटिबद्ध हुए। जिसकी प्रतिज्ञा को पूर्ण कराने के लिए सौधर्म इन्द्र ने आदेश किया और अर्धनिमिष में जिनमंदिर का भव्य निर्माण हो गया। वह मनोवती भी धन्य है और इस लोक में सदैव उसकी धवल कीर्तिपताका लहराती ही रहेगी।

(६)

बगीचे में बसंतऋतु अपनी मधुरिमा से सबका मन आकर्षित कर रही है। अशोक की लाल-लाल कोंपल को खा-खाकर तोते क्रीड़ा कर रहे हैं। आम्र की ताजी मंजरियों को खा-खाकर कोयल अतीव मधुर शब्द बोल रही हैं। पक्षीगणों की कलरव ध्वनि से सारा बगीचा पुलकित हो रहा है। मानों वह मनोवती के गुणगान को गाने में ही एकतान हो गया है। कहीं पर लताएँ फूलों को बिखेर रही हैं और एक तरफ बकुलवृक्ष मौलसिरी की कलियों को बिखेरते हुए मानों मनोवती की अर्चना ही कर रहा है।

मनोवती प्रसन्न है और पति की उदासीनता को दूर करने के लिए निवेदन करती है—

"स्वामिन्! आप उदासीन क्यों हैं? चार दिन हुए बाजार में जाकर आप वापस आ जाते हैं दिनभर आपका कैसा व्यतीत होता है? किसी का कुछ परिचय हुआ या नहीं?"

बुद्धिसेन दीर्घ निःश्वास लेकर कहते हैं—

"प्रिये! मैं क्या बताऊँ? मुझे बड़ा आश्चर्य हो रहा है कि मेरा भाग्य इस समय बिल्कुल साथ नहीं दे रहा है। बहुत लोगों से मेरा परिचय हो चुका है। सब प्रेम से बोलते हैं, पास में बिठाते हैं किन्तु किसी ने अभी तक यह नहीं कहा कि तुम मेरे से कुछ द्रव्य लेओ और व्यापार धंधा करो। मुझे भी किसी से कुछ माँगते हुए शर्म आती है। मैं क्या करूँ? मुझे ऐसा लगता है कि अब मेरे से कुछ भी नहीं होगा?"

"आप इतनी जल्दी निराश क्यों हो रहे हैं? जब तक अपने पास धर्म है, तब तक अपने को कोई भी चिंता नहीं है आज नहीं कल, कल नहीं परसों, कुछ न कुछ व्यापार का सिलसिला जमेगा ही।"

"यदि अपना पुण्य का ही उदय होता तो अपने को अपने पिता ही घर से क्यों निकाल देते? अपना भाग्य इस समय बहुत ही कमजोर दिख रहा है।"

मनोवती अपने पति को एक मोती देती है और कहती है—

"अब आप उठिये, चिन्ता छोड़िए, मैं जैसा कहती हूँ वैसा कीजिए। जहाँ पर वह नग आपने गिरवी रखा है, वहीं पर जाकर उनसे एक मुहर ले लीजिए। फिर आप सीधे राजदरबार में पहुँचिये। यदि द्वारपाल आपको रोकेगा तो आप उसे मुहर दे दीजिए और आगे राजा के पास पहुँचकर उनके समक्ष भेंटरूप में यह मोती प्रदान कर दीजिए। फिर देखिए अपना भाग्य तत्काल पल्टा खा जायेगा।"

कुमार मनोवती के कहे अनुसार मोती लेकर चल पड़ता है और उसी उपाय से राजा के पास पहुँचकर वह मोती उन्हें भेंट करता है। राजा उस मोती को बार-बार देखते हैं और आश्चर्य से पूछते हैं—

"आप कौन हैं? कहाँ से आये हैं? आपका शुभनाम क्या है और आपके साथ और कौन-कौन हैं?"

"मेरा नाम बुद्धिसेन है? मैं बल्लभपुर के प्रख्यात जौहरी हेमदत्त सेठ का पुत्र हूँ मेरी धर्मपत्नी मेरे साथ हैं?"

"अच्छा! तो आप अभी कहाँ ठहरे हुए हैं?"

"मैं शहर के बाहर मकरकेतु नामक बगीचे में ठहरा हुआ हूँ।"

"मंत्रिन्! खजांची साहब को बुलाओ।"

"जो आज्ञा महाराज!

तत्क्षण ही खजांची साहब उपस्थित हो जाते हैं—

"हुकुम कीजिए महाराज!"

"देखो, मुहरों से भरा हुआ स्वर्ण थाल ले आओ और उत्तम-उत्तम वस्त्र आभूषण जो कि युगल दम्पत्ति के लिए हों, ऐसे वस्त्र आभूषण ले आओ।"

खजांची कुछ देर बाद सब वस्तुएँ उपस्थित कर देता है और महाराज कुमार बुद्धिसेन को पुरस्कार में देते हैं और मंत्री से कहते हैं—

"मंत्रिन्! तुम स्वयं जाकर शहर के भीतर उत्तर दिशा में जो बड़ी हवेली है, वह इनके लिए खुलवा दो तथा नौकर-चाकर आदि सभी वस्तुओं से इनकी पूरी व्यवस्था कर दो।"

अनन्तर महाराज दूसरे मंत्री से कहते हैं—

"मंत्रिन्! आप अपने रत्नपारखी पुष्पराज को तो बुलाओ।

"जो आज्ञा महाराज!"

तत्काल ही पुष्पराज महोदय पधारते हैं और महाराज का अभिवादन कर अपने उचित स्थान पर बैठ जाते हैं।

"हाँ! देखिये तो सही, यह मोती बहुत बढ़िया प्रतीत हो रहा है।"

पुष्पराज देखकर विस्मयचकित हो उठता है—

"राजन्! इतना बढ़िया मोती तो इस मर्त्यलोक में मिलना ही कठिन है। यह कोई दिव्य मोती है।"

"इसका मूल्य?"

"हूँ!! राजन्! इसका मूल्य तो.....मेरी समझ में नहीं आ रहा है यह तो कोई एक अमूल्य वस्तु है।....."

"फिर भी....."

"इसकी कीमत तो अगर आप आँकना ही चाहें तो महाराज!.....इसकी कीमत पचास करोड़ मोहरों से कम नहीं समझिये।"

"ओहो! इतनी कीमती वस्तु इस जौहरी पुत्र को कैसे मिली? कुछ भी हो, अपने भाग्य में थी अपने पास आ गई। मंत्रिन्! भण्डारी को बुलाओ।

भण्डारी आकर साष्टांग नमस्कार कर एक तरफ खड़ा हो जाता है—

"आज्ञा दीजिए महाराज!"

"हाँ, लो यह मोती बहुत ही बेशकीमती है। तुम इसे बहुत ही संभाल कर भण्डार में रखो।"

"बहुत ठीक!"

भण्डारी चला जाता है और डिब्बे के अंदर मोती को रखकर उसे तिजोरी में रखकर बंद कर देता है।

कुमार बुद्धिसेन बगीचे में पहुँचकर मनोवती को सारा समाचार सुनाते हैं और राजा के आदेश के अनुसार मंत्री स्वयं उनके साथ में थे। उनके साथ ही पत्नी को लेकर शहर की हवेली में आ जाते हैं।

प्रातःकाल मनोवती ने देखा कि अपने पास में वे दोनों मोती मौजूद हैं। वह सोचने लगी कि जब मैंने इनमें से एक मोती राजा को भेंट में भेजा था तो यह वापस यहाँ कैसे आ गया? कुछ देर बाद वह सब रहस्य समझ गई और पुनः पति से बोली—

"आज आप पुनः राजा के पास एक मोती भेंट करके आइये।"

"ठीक है! लाओ।"

बुद्धिसेन उस मोती को लेकर राजदरबार में पहुँचकर राजा के समक्ष भेंट करते हैं। राजा एकदम प्रसन्न हो उठता है—

"वाह! कितनी सुन्दर जोड़ी मिलाई! मंत्रिन्! भंडारी को बुलाओ कि वे कल का मोती लेकर आवें।"

भण्डारीजी को सूचना मिलते ही तिजोरी से डिब्बा निकालते हैं तो उनके होश गुम हो गये, वे सन्न रह गये। यह क्या? आखिर मोती गई कहाँ? उनके सिर की चोटी से लेकर पैर की एड़ी तक पसीना बह चला। जैसे-तैसे वे अपने को संभाल कर और खाली डिब्बी लेकर महाराज के समक्ष काँपते हुए पहुँचते हैं और नमस्कार करते हैं—

"हाँ भंडारी जी! लाइये मोती! जोड़ी मिलानी है।"

"महाराजाधि.....राज.....!"

वह बोलते-बोलते रुक जाता है—

"ये क्या! मोती गायब हो गई। अच्छा! मैंने जो कह दिया था कि वह बेशकीमती है इसलिए गायब कर दी, इतनी जल्दी.....!

महाराज क्रोध में पागल हो उठते हैं और भंडारी के हाथ से डिब्बा गिर जाता है। बुद्धिसेन को उस भंडारी पर दया आ जाती है।

"सरकार! कोई न कोई चोर आज.....महल में आया होगा जिसने यह मोती चुराई है मम म.....महाराज! मैंने चोरी नहीं की.....।"

"अरे धूर्त! इस एक मोती के लिए ही चोर आया था और कुछ चोरी न करके केवल इसी एक मोती को ही ले जाता बस, बस! तू ही चोर है और कोई नहीं।"

"महाराज! महाराज! मेरे ऊपर दया....दृ....ष्टि....करो। महाराज! मैं निर्दोष.....हूँ।"

"चुप रह, चुप रह, ज्यादा मत बोल।.....अभी.....। इसे फाँसी पर चढ़ाने के लिए ले जाओ। कोतवाल! इधर आ....."

बुद्धिसेन बीच में ही महाराज को शांत करते हुए कहते हैं।

"महाराज! आप शांत होइये। मैं आपको कल इसकी जोड़ी लाकर देऊंगा।"

सभी दरबारी लोग एकदम धन्य-धन्य बोल उठते हैं-

"कुमार! आप धन्य हैं! आपने आज भंडारी के प्राणों की रक्षा की है। आप महा पुण्यशाली जीव हैं और महान हैं।"

बुद्धिसेन वहाँ से आकर अपनी धर्मपत्नी मनोवती से सारी कथा सुना देते हैं.....और कहते हैं—

"हाँ, तो अब दूसरी मोती भी देवो, अपने पास मत रखो।"

मनोवती चिढ़कर बोलती है—

"वाह! बिना समझे-बूझे आपने राजा को दूसरी मोती देने का आश्वासन कैसे दे दिया? मैंने तो आपको कल एक मोती दी थी और एक आज दे दी। भला अब मेरे पास तीसरी मोती कहाँ से आयेगी?"

बुद्धिसेन एकदम अवाक् रह जाते हैं और सोचने लगते हैं यह

क्या हुआ? पुनः मनोवती के मुख को देखते हैं। तब मनोवती हंसकर विनम्र शब्दों में कहती है—

"अबकी बार तो मैं आपकी बात रख लूँगी और मोती दे दूँगी। परन्तु मेरे स्वामिन्! अब आगे से आप बिना जाने-बूझे ऐसी गलती नहीं कर देना।"

इसके बाद वह अपने पति को अपनी दर्शन प्रतिज्ञा के विषय में आद्योपांत घटना सुनाती है, वह कहती है—

"प्रियतम! मैंने बाल्यकाल में दिगम्बर मुनिराज के समीप ही विद्या ग्रहण किया था, मेरे संस्कार धर्म के बहुत ही उज्ज्वल थे। जब मैं यौवन अवस्था में आई, मेरे पिता ने पुरोहित के द्वारा बहुत से देशों का अन्वेषण करके मेरे लिए आपको योग्य वर निर्धारित किया। मैंने समझ लिया कि अब मेरी शादी होने वाली है। एक दिन पुनः मैं महामुनि के निकट गई और दर्शन-स्तुति करके उनसे प्रार्थना करने लगी-भगवन्! मुझे कोई ऐसा नियम दीजिए कि जिससे मेरा जीवन सार्थक हो जावे।.....उस समय मुनिराज ने मुझे सर्व रत्नों में शिरोमणि शीलव्रत दिया पुनः मैंने और कुछ इच्छा व्यक्त की तब उन्होंने पुष्पांजलि व्रत करने का उपदेश देकर उसकी विधि बताई और मैंने गुरु से यह व्रत भी ग्रहण किया है।

इतने पर भी मुझे संतोष नहीं हुआ और मैंने ऐसा नियम लिया कि मैं जिनेन्द्रदेव के मंदिर में जब गजमोती के पुंज चढ़ाऊँगी, तभी भोजन करूँगी। स्वामिन्! इसी नियम से मैंने आपके घर में तीन उपवास कर डाले थे और फिर भाई मनोज कुमार के आने पर भेद खुलने पर आपके पिता ने मुझे ढेरों गजमोती दिखाये थे और उन्होंने कहा 'बेटी! जब तक तू जियेगी, तब तक ये मोती खत्म नहीं होंगे। तू मनमाने गजमोती चढ़ा

और जिनेन्द्र देव की आराधना कर।' लेकिन मेरे दुर्भाग्य ने आपको ही उनसे जुदा कर दिया।

".....मैं इस रतनपुर के बगीचे में तीन दिन तक भूखी रही और रास्ते से चार दिन की निराहार थी। सात उपवास के बाद भी मैंने मन चंचल नहीं किया। प्रतिज्ञा से च्युत होने का मेरे मन में अणुमात्र भी विकल्प नहीं हुआ। जब आप बार-बार मेरे शरीर की अस्वस्थता पर चिन्ता व्यक्त कर रहे थे।.....प्राणनाथ! मैं उस समय अपने आपको पत्थर का बनाकर स्थिर थी। मैं आपसे क्या कहती और आप मेरी क्या सहायता करते? किन्तु.....धर्म का प्रभाव अचिन्त्य है। देवों ने आकर मुझे जिनेन्द्रदेव के दर्शन कराये और मेरी प्रतिज्ञा पूरी की। बगीचे में अकस्मात् नीचे मेरा पैर धसका, मैंने शिला उठाकर देखा तो विशाल जिन मंदिर था.....ओहो! उसका क्या वर्णन करना! वहाँ मैंने गजमोती चढ़ाये और पुनः आते समय शिला के पास मुझे ये दो मोती मिले। ये नर-मादा मोती हैं इनका यह स्वभाव है कि ये अकेले कभी नहीं रहेंगे- नियम से नर मोती मादा के पास आ जायेगा।"

सारे रहस्य को सुनकर बुद्धिसेन आश्चर्य से अपनी प्राणप्रिया का मुख अवलोकन करते हैं और आनन्द में विभोर हो जाते हैं। अपने भाग्य को धन्य समझते हैं।

अर्धरात्रि में पुनः वह 'नर मोती' उड़कर मनोवती के पास रखी हुई 'मादा मोती' के पास आ जाता है। दूसरे दिन बुद्धिसेन पुनः मनोवती से मोती लेकर राजा के दरबार में पहुँचता है और राजा को भेंट में प्रदान करता है। राजा पुनः भंडारी को बुलवाते हैं और भंडारी तो मोती का डिब्बा खाली देखकर वहीं स्तब्ध हो जाता है। वह सोचता है अरे! मैंने

डिब्बे में रखकर तिजोरी में डिब्बा रखा और उसे सात ताले की कोठरी में बंद करके रखा था तो भी यह क्या हुआ?

खैर! जैसे-तैसे साहस करके भण्डारी दरबार में उपस्थित होता है और पुनः राजा के सामने गिड़गिड़ाता है। राजा आज तो उसके ऊपर आगबबूला हो उठते हैं किन्तु बुद्धिसेन कुमार महाराज के क्रोध को शांत करते हैं और कहते हैं—

"राजाधिराज! इन मोतियों का रहस्य देखिये! मैं अभी आपकी इस मोती का जोड़ा मिलाये देता हूँ और अब ये आपके महल में रहेंगे। यह जो मोती मैं आपको दे गया वह 'नर' मोती था। यह हजारों कोश की दूरी पर क्यों न हो किन्तु उड़कर 'मादा' मोती के पास पहुँच जाता है यह इसका स्वभाव है अतः अभी तक दो दिन हुए यह 'नर' मोती बराबर उड़कर चला जाता रहा है। इसमें आपके भण्डारी का रंचमात्र भी दोष नहीं है।"

दूसरा मोती देते हुए—

"लीजिए महाराज! यह 'मादा' मोती है, अब ये दोनों आपके यहाँ रहेंगे।"

रतनपुर नरेश यशोधर अत्यधिक प्रसन्न होकर मन में सोचते हैं-यह कुमार उत्तम कुल प्रसूत है, बुद्धिमान् है और पुण्यवान् है। इसने मुझे अनुपम भेंट दी है बदले में मैं भी इसे कृतार्थ करूँ.....कुछ क्षण सोचकर महाराज निर्णय कर लेते हैं कि इसे अपनी 'गुणवती' कन्या देना।

"कुमार बुद्धिसेन! मैं आपसे बहुत ही प्रसन्न हूँ और आपसे अपना स्थायी संबंध स्थापित करना चाहता हूँ।.....मेरी एक गुणवती नाम की कन्या है। मेरी दृष्टि में वह सर्वथा आपके ही योग्य है। आप उसे स्वीकार

करें तो मैं कृतकृत्य हो जाऊँ।"

बुद्धिसेन राजा की बात सुनकर लज्जा से अपना माथा झुका लेते हैं और मौन से ही स्वीकृति दे देते हैं भला राजपुत्री किसे नहीं भायेगी?

महाराज उसी समय मंत्री से कहकर ज्योतिषी को बुलवाते हैं और शुभमुहूर्त निकलवाते हैं। शहर भर में चर्चा फैल जाती है कि गुणवती राजपुत्री के भाग्य से अकस्मात् रतनपुर में कोई एक 'नररत्न' आया है। राजा ने वैशाख सुदी तीज को कन्या का विवाह निश्चित कर दिया।

बुद्धिसेन वहाँ से उठकर घर पहुँचते हैं और मनोवती से कहते हैं "प्रिये! तुमने मुझे मेरे द्वारा राजा को मोती की भेंट दिलाकर गहरे बंधन में बँधवा दिया।"

"क्या हुआ कहिए तो सही? आप तो बहुत ही प्रसन्न दिख रहे हैं।"

राजा ने अपनी कन्या के साथ मेरी शादी करने का निर्णय कर लिया है और मुहूर्त भी.....।

मनोवती बीच में ही बात काट कर हँसते हुए—

"अच्छा, अच्छा! तो आप राजजमाई हो गये। ठीक है अब तो आप मुझे न भूल जाना।"

"वाह! प्राणबल्लभे! कैसी बातें कहती हो? यह सब तुम्हारा ही प्रसाद है। तुम्हारी ही प्रतिज्ञा के प्रभाव से ये मोती मिले और मोतियों की भेंट से ही मुझे राजसम्मान प्राप्त हुआ है। प्रिये! यह एकमात्र तुम्हारी प्रतिज्ञा का ही चमत्कार है। जो चंद मिनटों में अप्रतिम वैभव से मिला रहा है, रंक से राव बना रहा है और उच्च स्थान पर पहुँचा रहा है। सच है.....धर्म के प्रसाद से ही विष भी अमृत बन जाता है, दुर्दिन भी मंगलमयी हो जाते हैं और आकाश से भी रत्नों की वर्षा होने लगती है।"

"इसलिए स्वामिन्! हमेशा धर्म की उपासना करते रहिए।"

"ठीक ही है प्रिये! जब धर्म की मूर्तिस्वरूप तुम मेरे घर में विद्यमान हो तो भला मैं धर्म से पराङ्मुख कैसे हो सकूँगा? प्रिये! मैं सदैव तुम्हारी आज्ञा का पालक ही रहूँगा।"

"आप यह क्या कह रहे हैं? आप तो सदैव हमारे पूज्य हैं। मैं सदैव आपकी आज्ञाकारिणी आपके चरणों की दासी हूँ। आपके सुख में सुखी और दुःख में दुःखी होना यह मेरा परम कर्तव्य है और मेरा परम सौभाग्य है कि आप मुझे अपने साथ लेते आये हैं।"

"सच है प्रिये! यदि आप मेरे साथ न होतीं तो आज यह उन्नति का दिन देखने को नहीं मिलता।"

इसी प्रकार से उभय दम्पत्ति सुखपूर्वक वार्तालाप करते हुए कुछ क्षण बाद निद्रा देवी की गोद में पहुँच जाते हैं। प्रातः मंगल वाद्यों के साथ प्रभाती होती है। दोनों उठकर अपनी धर्म क्रिया में तत्पर हो जाते हैं।

वैशाख सुदी तीज के दिन बड़े ठाटबाट से कुमार बुद्धिसेन का विवाह राजकन्या गुणवती के साथ हो जाता है। महाराज यशोधर अपने जमाई को अपना चौथाई राज्य देकर उसे अनेकों ग्रामों का राजा बना देते हैं। मनोवती भी प्रसन्न है, क्यों न हो? क्योंकि उसकी प्रतिज्ञा के प्रभाव से यह सब उन्नति हो रही है। विवेकशील पत्नी अपने पतिदेव की उन्नति को देखकर अपनी ही उन्नति समझती है। मनोवती तत्त्वज्ञान से भरपूर है। उसने मुनिराज के पास धर्म ग्रन्थों का गहरा अध्ययन किया है, वह अपने में मगन है।

कुमार बुद्धिसेन अब जौहरी पुत्र ही नहीं रहे बल्कि राजा हो गये हैं

और मनोवती उनकी महारानी है। बुद्धिसेन अपनी बुद्धि के बल से उस रतनपुर में सभी के स्नेहभाजन बन चुके हैं और मनोवती भी सभी के लिए एक आदर्श महिलारत्न प्रख्यात हो चुकी है। मनोवती का धवल यश चारों तरफ अपनी सौरभ को बिखेर रहा है।

(७)

महल के उद्यान में चारों ओर हरियाली ही हरियाली दिख रही है। क्रीड़ा सरोवर जल से परिपूर्ण भरे हुए हैं और उनमें लाल कमल खिल रहे हैं किसी सरोवर में श्वेत कमल फूल रहे हैं। पवन उन कमलों की पराग मिश्रित सुगन्धी को चुरा-चुराकर ले जा रहा है और मनचाहा सबको बांट रहा है। मेघ की गर्जना सुनते ही मयूरों का तांडव नृत्य शुरू होता है। एक मयूर तो अपनी मयूरनी के सामने थिरक-थिरक कर नाच रहा है। सरोवरों में राजहंस अपनी हंसी के साथ क्रीड़ा कर रहे हैं, बत्तखें पानी में तैरती हुई ऐसी मालूम पड़ती हैं मानो विद्याधरों के छोटे-छोटे विमान ही पृथ्वी पर उतर आये हों। भास्कर भगवान् अपने सहस्रकरों से दिनश्री का आलिंगन करके अब परदेश प्रस्थान के समय उसे अपनी भुजाओं से अलग करना चाहते हैं किन्तु दिनश्री स्वामी के वियोग को सहन करने में असमर्थता व्यक्त करते हुए ही मानो रंग-बिरंगी साड़ी पहनकर पति के साथ चलने को तैयार हो जाती है किन्तु भास्करदेव के पुनर्मिलन के आश्वासन से वह वहीं ठहर जाती है।

महल के अग्रिम भाग से मनोवती के नेत्र चारों ओर की शोभा को निरख रहे हैं। अकस्मात् सामने से कौन आ रहा है? ओहो! पतिदेव!.....आज इधर कैसे चले आ रहे हैं? क्या कोई विशेष कारण

आ गया? क्या बिना कारण से नहीं आते.....? हो सकता है कि आज कोई पुरानी स्मृति आ गई हो।

कुमार बुद्धिसेन ऊपर पहुँचते हैं और मनोवती स्वागत के लिए खड़ी हो जाती है। पतिदेव के उचित आसन पर बैठने के अनंतर मनोवती भी पास में बैठ जाती है-

"आप राजजमाई हो गये हैं, फिर भला आज इधर कैसे आ गये? कोई विशेष हेतु?....."

बुद्धिसेन अतीव शर्म से माथा नीचा कर लेते हैं, कुछ भी जवाब नहीं दे पा रहे हैं। मन-ही-मन सोचने लगते हैं-ओहो! मैंने बहुत बड़ी गलती की है—

".....अब तो आप राजा के एकमात्र स्नेहभाजन हैं। फिर गुणवती जैसी गुणवती राजदुलारी आपके चरण दाबती है। सच है, राज्यलक्ष्मी और मद को न करे ऐसा होना प्रायः कठिन ही है.....।"

मनोवती कुछ क्षण रुक जाती है किन्तु बुद्धिसेन जब एक शब्द भी नहीं बोलते हैं तब पुनः वही बोलती चली जाती है।

"स्वामिन्! वे बातें तो सर्वथा भूल जाने की ही हैं कि आपको आपके पिता ने घर से निकाल दिया और आप हस्तिनापुर आये, मैंने हठपूर्वक आपका साथ किया। हाँ! अब तो आप राजठसक में डूबे हुए हैं पुनः आपको मेरी स्मृति आज कैसे आ गई?"

"अस्तु! कोई बात नहीं है। आपने मुझे भुला दिया तो भी आपकी कोई हानि नहीं होगी किंतु.....स्वामिन्! ऐसे ही राज्यलक्ष्मी के नशे में होकर आप धर्म को नहीं भुला देना कि जिसके प्रसाद से आप इस वैभव को प्राप्त हुए हैं।"

"मेरे से यद्यपि बहुत बड़ा अपराध हुआ है फिर भी आपका हृदय विशाल है आप एक बार क्षमा दान दीजिए.....शायद भविष्य में पुनः ऐसी गलती अब नहीं हो सकेगी।" कुछ क्षण सोचकर, "प्राणप्रिये! अब आप जो भी आदेश दें, मैं करने को तैयार हूँ।"

मनोवती शांत हो जाती है और पुनः विनम्र शब्दों में बोलती है—

"प्रियतम्! आपने प्रत्यक्ष में धर्म के फल को देखा है कि जिसने जंगल में अपने को उठाकर मंगल में स्थापित किया है। चारों पुरुषार्थों में यह धर्म पुरुषार्थ ही प्रथम पुरुषार्थ है। जितने भी संसार के उत्तम-उत्तम सुख हैं, वे सब धर्मरूपी बगीचे के ही फल हैं और तो क्या अक्षय-अनंत-अविनाशी मोक्ष सुख भी इस धर्म के प्रसाद से ही मिलता है और धर्म का निकेतन श्रीजिनमंदिर ही है अतः मेरी इच्छा है कि आप एक विशाल जिनमंदिर का निर्माण कराइये।"

बुद्धिसेन अतीव प्रसन्न होकर—

"प्रिये! आपने बहुत ही उत्तम बात सोची है। यह कार्य तो मैं अवश्य ही करूँगा। प्रातः ही ज्योतिषी से मुहूर्त निकलवा कर नींव रखा देनी है.....।"

"स्वामिन्! आगम में जिनमंदिर बनवाकर उसमें जिनप्रतिमा के विराजमान कराने का पुण्य अचिन्त्य कहा है। इस महान् कार्य से आपका सर्वत्र यश फैलेगा और परलोक में भी उत्तम फलों की प्राप्ति होगी। जिनबिम्ब निर्माण का फल तो अन्त में मोक्षपद ही माना गया है।"

"आपके आदेश का पालन अतिशीघ्र करूँगा। अब आप और कुछ सुनाइये।"

हँसकर मनोवती कहती है—

"मुझे तो जो भी सुनाना था सुना दिया, अब आप ही कुछ सुनाइये चूँकि आप बहुत दिन बाद आये हैं इतने दिनों में आपको राजनीति का भी काफी अनुभव आ चुका होगा।"

"क्षमा याचना के बाद आप मेरी गलती को पुनः क्यों दोहरा रही हैं?"

"मैं तो इस समय सहजभाव से ही पूछ रही थी यदि आपको कुछ नहीं बताना है तो छोड़िये।"

मनोवती कुछ क्षण सरस मधुर वार्तालाप के द्वारा पति के मन को हल्का करती है। प्रेमपूर्ण वातावरण में बुद्धिसेन अपनी पत्नी के गुणों का मूल्यांकन करते हुए मानो उसे अपना सर्वस्व समर्पित करते हुए ही उसके गाढ़ आलिंगन में बँध गये थे.....।

चारों तरफ चिड़ियाँ चहचहा रही हैं, मंगल बाजे बज उठे, वैतालिक ने प्रभाती के मधुर गान से मंगलमयी ऋषभदेव यश गाया, मनोवती उठती है और सबसे पहले महामंत्र का स्मरण करते हुए पंचपरमेष्ठी को नमस्कार करती है पुनः पतिदेव के चरण स्पर्श करके अपने प्राभातिक कार्यों में संलग्न हो जाती है। बुद्धिसेन भी स्नानादि से निवृत्त होकर अपनी सुमुखि मनोवती के साथ जिनेन्द्रदेव का अभिषेक-पूजन करके भोजन करते हैं और वहाँ से चलकर सीधे राजदरबार में पहुँचते हैं।

महाराज यशोधर अपने जमाई का समुचित सत्कार करके अपने पास ही भद्रासन पर बिठा लेते हैं और कुशल क्षेम पूछकर व्यंग्य रूप से मनोविनोद करते हुए कुमार के मन को प्रसन्न करते हैं। समय पाकर बुद्धिसेन निवेदन करते हैं—

"पूज्यपाद! आपके समक्ष मैं कुछ निवेदन करना चाहता हूँ।"

"कहिये कहिये! मैं तो इसी प्रतीक्षा में हूँ कि आप लोगों का कुछ

उपकार कर सकूँ।"

"महाराज! आपकी पुत्री मनोवती एक विशाल जिनमंदिर बनवाने की इच्छा व्यक्त कर रही है।"

यशोधर अतीव प्रसन्न हो गद्‌गद होकर—

"बहुत अच्छा है, बहुत अच्छा है! वाह! क्या उत्तम विचार है। धन्य है वह रमणीरत्न, धन्य है! कुमार! तुमने ऐसी धर्मपत्नी पाकर वास्तव में जीवन में सब कुछ पा लिया है। तुम बहुत ही पुण्यशाली आत्मा हो.....। अच्छा तो तुम इस रतनपुर शहर में जहाँ चाहो वहाँ, जितनी जगह में चाहो उतनी जगह में, जितना बड़ा मंदिर चाहो उतनी बड़ी जगह घेरकर काम शुरू करा दो।"

"ज्योतिषी से पहले मुहूर्त निकलवाना होगा।"

"हाँ, हाँ, मंत्रिन्! ज्योतिषी को शीघ्र ही बुलावो।"

कुछ ही क्षण में ज्योतिषी आकर यथोचित् अभिवादन करता है—

"जय हो! जय हो! महाराजाधिराज की जय हो!"

"हाँ, पण्डित जी विराजिये।"

पंडित जी कर्मचारी के द्वारा प्रदत्त आसन पर बैठ जाते हैं।

"मंदिर जी के निर्माण हेतु बहुत ही उत्तम मुहूर्त निकालिए।"

पंडित कुछ देर तक पंचांग देखते हैं और गणित का हिसाब करते हुए पूछते हैं—

"राजन्! किनके नाम से?"

"हमारे जमाई बुद्धिसेन के नाम से।"

बुद्धिसेन की तरफ देखकर-"धन्य हो महाराज, धन्य हो! आप बड़े ही महिमाशाली हो। श्रीमान् जी! कल सुबह साढ़े आठ बजे का

मुहूर्त बहुत ही श्रेष्ठ है। इस मुहूर्त पर किये गये निर्माण का यश.....क्या बताऊँ आपको, युग-युग तक इस पृथ्वी तल पर फैलाता रहेगा। जैसे मर्यादा पुरुषोत्तम भगवान् रामचन्द्र की कीर्ति आज भी भूमण्डल पर फैल रही है और न जाने कब तक फैलती रहेगी और ऐसे ही महाराज! इस मुहूर्त पर मंदिर के निर्माण को प्रारंभ करने से आप लोगों की कीर्ति अमर हो जायेगी।"

"ठीक, ठीक! बहुत ठीक! अब विधानाचार्य को बुलवाकर उनसे समझ लीजिए, कल प्रातः किन-किन वस्तुओं की आवश्यकता होगी। अच्छा, आप तो अब प्रमुख मंत्री के साथ जाकर जगह का निर्णय कीजिए, देर न कीजिए।"

"जो आज्ञा महाराज!"

बुद्धिसेन प्रमुख मंत्री के साथ स्थान का निर्णय करके एक कोश की जगह को घेर कर रत्नचूर्ण से लाइन डलवा देते हैं। पुनः मनोवती के महल में पहुँचकर सारी बात सुना देते हैं।

प्रातःकाल विधानाचार्य की आज्ञा के अनुसार कुमार अपनी धर्मपत्नी मनोवती के साथ शुभ्र धौत वस्त्र पहन कर श्री जिनेन्द्र देव की आराधना करके उस स्थान पर पहुँच कर श्री जिनभवन के नींव खनन की विधि को विधिवत् करते हैं। एक कोश के चारों ओर नींव की खुदाई शुरू हो जाती है। पुनः शुभ मुहूर्त में शिलान्यास विधि करके निर्माण काम चालू करा देते हैं। योग्य कार्य-संचालक को बुलाकर बुद्धिसेन आदेश देते हैं—

"हाँ, देखिये, धनपालजी! मैंने तिजोरियों की कोठी खुलवा दी है। जितना द्रव्य लगे लेते जाइये और खुले मन से खुले हाथों द्रव्य खर्च कीजिए। जो भी कारीगर (मिस्त्री) और मजदूर आवें, उन्हें काम पर

लगाइये। किसी को वापस नहीं करना। समझ गये ना!"

"हाँ सरकार! समझ गया। बहुत ही बढ़िया काम होगा। हमें तो बड़े-बड़े मंदिरों का, रजवाड़ों का और हवेलियों का बहुत बड़ा अनुभव है। मैं तो अच्छे-अच्छे नक्शे बनाने वालों को, चित्रकारों को और अच्छे-अच्छे कारीगरों को बुलाऊँगा। बड़ा शानदार मंदिर बनेगा महाराज! आप तो देखते ही हर्ष में विभोर हो उठेंगे।"

"ठीक है, और जो कुछ भी आवश्यकता हो, मुझे कहना।"

चारों तरफ दूर-दूर देश में चर्चा फैल जाती है कि बहुत बड़ा जिनमंदिर बन रहा है। तमाम मजदूर चले आ रहे हैं और काम दिन पर दिन द्रुतगति से चल रहा है।

(८)

दैव की लीला बड़ी विचित्र है, यह कभी किसी पर रहम नहीं करता है। अतिशय कठोर प्रकृति वाला है। चौदह परदेशी लोग आकर रतनपुर के बाहर बगीचे में ठहरे हुए हैं। उनके साथ छोटे-छोटे बच्चे रो रहे हैं। वे लोग कई दिनों के भूखे हैं। धनदत्त, सोमदत्त, विनयदत्त, जिनदत्त, अमरसेन और धरसेन छहों भाई खड़े-खड़े चर्चा कर रहे हैं। सभी स्त्रियाँ किंकर्तव्य-विमूढ़ हुई बैठी हुई बच्चों को चुप कर रही हैं। बच्चे जोर-जोर से रो रहे हैं, भूख से व्याकुल हो रहे हैं। बेचारे वृद्ध दंपत्ति आँखें गीली किये हुए बैठे कुछ सोच रहे हैं। धनदत्त आगे बढ़कर कहता है—

"चलो भाई चलो! अब देरी ना करो, देखो ना! परसों उस छोटे से गाँव में भीख में कुछ सूखे चने मिले थे जो कि माँ और पिता से तो

खाये भी नहीं गये थे। कल दिन-रात चलते-चलते हो गया, अन्न-पानी नसीब नहीं हुआ है। आज भी इतना दिन ऊपर चढ़ आया है मेरे खुद के प्राण कण्ठ में आ रहे हैं। चलो चलो! देखें गाँव तो पास ही है। यह तो बहुत बड़ा शहर दिख रहा है। कुछ अच्छी भीख मिले तो सबका पेट भरे। हाय! बेचारे बच्चे तो कैसे बिलख रहे हैं।"

"भाई! सब ना चलो, तो एक दो लोग ही चलो। कोई निकलो तो सही! लो मैं साथ चलता हूँ।

"हाँ, हाँ धरसेन! तू आगे बढ़ तभी कोई आगे बढ़ेगा, ये लोग तो बातों में ही घंटों निकाल देंगे। देख तो सही! तेरे पिता जी की क्या स्थिति हो रही है? नहीं तो चल मैं भी साथ चलती हूँ।"

"नहीं नहीं माँ! तुम तो आज बहुत थकी हो.....। तुम बैठ जावो.....। हाँ, देखो! इस झाड़ के नीचे ठंडी-ठंडी हवा चल रही है, थोड़ा सा आराम कर लो।"

"अरे बेटा! पेट में तो आग जल रही है, ऊपर से ठण्डी हवा क्या करेगी?"

छहों लड़के जल्दी-जल्दी शहर की तरफ चलते हैं। अन्दर घुस कर एक दुकान के पास खड़े हो जाते हैं-

"भाई साहब! हमें कुछ पैसे दे दो।"

वह दुकान मालिक सेठ इन्हें ऊपर से नीचे तक देखता है और आश्चर्य से चकित होकर कहता है-

"अरे! भाई! तुम कौन हो? कहाँ से आये हो?....."

"भइया! दो चार पैसे के लिए हम लोगों का इतिहास क्या पूछना?"

दुकान मालिक इनका ऐसा उत्तर सुन तथा दूसरी तरफ से आने

वाले अपने-अपने ग्राहकों को देखकर जल्दी से कुछ पैसे उन्हें देता है और कहता है अच्छा, अच्छा! बढ़ो आगे.....। धनदत्त कहता है—

"भाई धरसेन! यह लो, तुम पहले कुछ खाने का सामान लेकर चलो जिससे बच्चों को तसल्ली हो। हम लोग आगे बढ़कर कुछ और प्राप्त कर अपने साथी के पेट भरने का पूरा सामान लेकर आ जावेंगे।"

"ठीक!"

धरसेन कुछ रोटियाँ खरीद कर जल्दी से वापस बगीचे में पहुँचता है। इधर पाँचों भाई धीरे-धीरे आगे बढ़कर अन्य कुछ माँगकर उनका सामान खरीदकर वापस बगीचे में आ जाते हैं। सभी लोग स्नानादि करके कुछ न कुछ खाकर पानी पीकर कलेजे को शांत करते हैं। हेमश्री अपने पतिदेव के पैर दबाने लगती है। सभी लोग पास में बैठ जाते हैं। चर्चायें शुरू हो जाती हैं—

"पिताजी! कल दिन में अपन सभी लोग शहर में ही चलेंगे। वहीं कहीं गुजारा करेंगे। यहाँ बगीचे में कब तक पड़े रहेंगे? देखा ना, ठंडी, गर्मी, भूख-प्यास सहन करते-करते सब बच्चे तो बीमार हो गये हैं। हम लोगों से भी अब जंगल की धूप-छाँव बर्दाश्त नहीं होती है। वैसे शहर अच्छा दिखता है, लोग भले हैं आज कई दिन बाद तो पेट में पूरा अन्न पहुँचा है।"

"पुत्रों! जैसा तुम कहो वैसा करेंगे। क्या करें बुद्धि नहीं काम करती है, भीख माँगते-माँगते भी कितने दिन निकल गये हैं अब अपने दिन कब पलटा खायेंगे?.....कौन जाने?"

कड़कड़ाती ठण्डी की रात! सभी बेचारे रातभर बैठे-बैठे सिकुड़े-सिकुड़े निकाल रहे हैं। न तन पर पूरे वस्त्र हैं और न ओढ़ने-बिछाने को

रजाई, गद्दे या कम्बल। बच्चे तो माँ की गोद में चिपटे हुए सी-सी करके दाँत कड़कड़ा रहे हैं।

प्रभात होने पर कुछ ऊपर सूर्य आ जाने के बाद सभी लोग एक साथ शहर में प्रवेश करते हैं। चलते हुए मार्ग में रुक-रुककर पथिकों से और दुकानों से कुछ पैसों की याचना करते हैं। आखिर तो पेट भरना ही पड़ता है। यह पेट अगर न होवे तो फिर किसी को कुछ दुख ही न रहे। धीरे-धीरे वे सर्राफों के बाजार में पहुँच गये। शहर के एक प्रमुख जौहरी ने दूर से इन्हें देखा वह तो कुछ देर तक देखता ही रहा पुनः सन्मुख आकर बोलता है—

"महाशय! आप लोग कोई उच्चकुलीन दिख रहे हो, मालूम पड़ता है कि किसी आकस्मिक संकट के आने से मारे-मारे फिर रहे हो! अरे भाई! तुम लोग भीख क्यों माँगते हो? कुछ मेहनत मजदूरी करके पेट भरो।"

"भाई! हम लोग अपरिचित हैं इसलिए हमें नौकरी पर कोई रखना नहीं चाहता है। क्या करें?"

"यहाँ पर राजा के जमाई साहब बड़ा सा मंदिर बनवा रहे हैं, उसमें हजारों मजदूर काम कर रहे हैं। तुम लोग वहाँ पहुँच जाओ, वे कुमार बहुत ही दयालु हैं तुम्हें अवश्य नौकरी पर लगा देंगे।"

"भाई साहब! हमें कोई नहीं जानते हैं नहीं रखेंगे। यदि आप दया करके हम लोगों को नौकरी दिलवा दें तो.....आपकी बड़ी मेहरबानी होगी।"

सभी लोग दीनमुख करके गिड़गिड़ाने लगते हैं। जौहरी जी दया

से आर्द्र होकर उन्हें साथ लेकर निर्माण किए जाने वाले जिनमंदिर की ओर चल पड़ते हैं। आगे-आगे जौहरी साहब चल रहे हैं व पीछे-पीछे सभी परदेशी भिखारी चल रहे हैं। बेचारे मन ही मन अपने भाग्य को कोसते हुए और कृत कर्मों की निंदा करते हुए कदम से कदम बढ़ाते चले जा रहे हैं। वहाँ पहुँचकर जौहरी जी ड्योढ़ीवान से कहते हैं—

"मुझे मालिक से मिलना है।"

द्वारपाल अन्दर जाकर—"महाराज! शहर के सुखपाल जी जौहरी आपकी सेवा में पधारे हुए हैं। उनके साथ कुछ मजदूर भी हैं। वे आज्ञा चाहते हैं?"

"उन्हें सादर अन्दर ले आओ।"

सभी लोग अन्दर प्रवेश करते हैं। राजदरबार जैसा ठाठ दिख रहा है। कुमार बुद्धिसेन मध्य में सिंहासन पर आरूढ़ हैं। राजसी वस्त्राभरणों से अलंकृत हैं। कानों में लटकते हुए कुण्डल और गले में पड़े हुए रत्नहार की किरणों से चेहरा इतना अधिक चमक रहा है और चारों तरफ इतनी किरणें फैल रही हैं कि मानों सभारूपी आकाश मण्डल में तेजस्वी भास्कर ही उदित हो रहा है। चारों तरफ रत्नों की चकाचौंध से सभा में रंग-बिरंगा प्रकाश जगमगा रहा है। आजू-बाजू मंत्री और सभासद लोग बैठे हुए हैं। मनोरंजन चल रहा है। जौहरी सुखपाल कुमार का अभिवादन करते हैं और कुमार के द्वारा निर्दिष्ट स्थान पर बैठ जाते हैं—

"कहिये सेठ जी! आज आपने किस हेतु से मेरा स्थान पवित्र किया है?"

"श्रीमान् जी! ये कुछ परदेशी लोग आये हुए हैं। बेचारे बड़े दुःखी हैं। आप इन्हें अपने यहाँ निर्माण कार्य के लिए नौकरी पर रख लीजिए।"

सभी बेचारे हाथ जोड़े खड़े हैं। बुद्धिसेन उन सबको अपलक दृष्टि से देख रहे हैं.....।ओहो!...ये मेरे माता-पिता और भाई-भावज!! अरे रे! रे! ये लोग इस दुरावस्था को कैसे प्राप्त हो गये?....आखिर क्या हुआ?.....हाय! इस चंचला लक्ष्मी को धिक्कार हो! इतनी जल्दी छप्पन करोड़ की सम्पत्ति कहाँ चली गई? ये तो मुझे पहचान भी नहीं रहे हैं।"

"ठीक है सेठ जी! आप निश्चिन्त होइये। इन सबका काम हो जायेगा।"

"अच्छा तो मैं चलता हूँ।"

जौहरी सुखपाल वहाँ से निकल जाते हैं। वे सभी परदेशी खड़े हैं, कुमार कहते हैं—

"तुम सभी लोग बैठो! अभी दो घंटे में हम तुम्हें काम पर लगा देंगे।"

तत्क्षण वहाँ से उठकर कुमार अपने महल में पहुंचते हैं और मनोवती से कहते हैं—

"प्रिये मनोवती! अभी एक महान् आश्चर्य की घटना सुनाने के लिए मैं आया हूँ।"

"सुनाइये, सुनाइये!"

उत्सुकता से पास में बैठ जाती है।

"मेरे माता-पिता, भाई और भावज सभी लोग मेरे यहाँ मजदूरी करने आये हैं।"

आश्चर्य चकित हो मनोवती बोलती है—

"ऐं!! आप क्या कह रहे हैं? वे लोग कहाँ हैं? आपने उन्हें 'वे ही लोग हैं' ऐसा कैसे जाना?

"ओहो! क्या मैं इतनी जल्दी अपने कुटुम्बियों को भूल जाऊँगा? क्या मैं उन्हें पहचान नहीं सकता? अभी कितने दिन हुए हैं शायद एक वर्ष भी तो नहीं हुआ है।"

"स्वामिन्! मुझे विश्वास नहीं है।.....हो भी सकता है। दैव का क्या भरोसा? यह क्षण में राजा और क्षण में रँक बना देता है।.....फिर भी इतनी अपरिमित सम्पत्ति कहाँ चली गई?"

"आप उसकी चिन्ता छोड़िये। मैं आपसे कुछ विचार-विमर्श करने आया हूँ। उस पर गौर कीजिए।"

"कहिए!"

"इन दुष्टों ने मुझे अकारण ही घर से निकाला है और अब दर-दर के भिखारी बने घूम रहे हैं। फिलहाल तो हमारे यहाँ नौकरी करने आये हैं अब तो हमारा मौका है जो चाहे सो कर सकता हूँ। प्रिये! यदि तुम कहो तो मैं इनकी ऐसी दुर्दशा करूँ कि ये भी कुछ समझें। कहो तो इनकी खाल उतरवा दूँ, या कहो तो इन पर इतना भार धराऊँ कि जितना पशुओं पर भी न लादा जा सके। और कहो तो इन्हें.....

"बीच में बात काटकर—

"हाय! आप क्या बोल रहे हैं? आपके मुख से ये कैसे शब्द निकल रहे हैं? आपको क्या हो गया है? जिन्होंने आपको जन्म दिया ऐसे माता-पिता के प्रति ऐसे शब्द कहते हुए आपको लज्जा नहीं आयी? धिक्कार है आपके जीवन को! जिनसे आप पैदा हुए हैं, उनके प्रति आपके इतने कड़े शब्द कथमपि उचित नहीं हैं।"

"तो आप क्या चाहती हैं?"

"अब आप तत्क्षण ही कुटुम्ब का मिलाप करो। अपना परिचय

देकर उन्हें सुख सम्पत्ति से सुखी करो। स्वामिन्! आप कितना भी उनका उपकार करेंगे तो भी आप माता-पिता के ऋण से कभी भी उऋण नहीं हो सकते। इसलिए अपकार के बदले उपकार ही कीजिए। वास्तव में विचार करके देखा जाये तो यह प्रसंग अत्यन्त बोध दे रहा है। पहली बात तो यह है कि उन्होंने आपका बुरा नहीं किया। आपके और हमारे कर्मों के उदय से ही वैसी समस्या आई। वे तो घर से निकालने में निमित्तमात्र ही हो सकते हैं। पूर्णरूपेण अपने अशुभ कर्मों के उदय से ही अपने को दुःख उठाना पड़ा है। दूसरी बात, अगर वे लोग आपको घर से नहीं निकालते तो आज आप राजजमाई कैसे बनते?.....जरा सोचो तो सही! तीसरी बात यह है कि जो लक्ष्मी इतनी चँचल है, जिसने क्षणेक में अपने कुटुम्बियों को भिखारी बना दिया है उस लक्ष्मी पर आप भी क्यों इतरा रहे हैं?

प्रियतम! यह लक्ष्मी सभी के साथ ऐसा ही व्यवहार करती है, किसी को भी नहीं देखती है, अपने को पाकर गर्विष्ठ होने वालों के प्रति यह ऐसा ही घृणित व्यवहार करती है उन्हें नियम से धोखा देती है। अतः अब आप वस्तुस्थिति समझकर और लक्ष्मी का अभिमान छोड़कर अपने लोगों को गले से लगाइये।"

कुमार कुछ क्षण चुप रहते हैं पुनः बोलते हैं—

"प्रिये! एक बार तो मैं इन लोगों से मजदूरी अवश्य कराऊँगा। फिर जो तुम कहोगी, सो ही करूँगा। मैं एक बार अपने मन की अवश्य निकालूँगा पुनः परिचय कराऊँगा।"

"आपका यह सोचना बिल्कुल भी उचित नहीं है।"

"कुछ दिन मजदूरी करके ये लोग अपनी करनी का फल तो पा

लें और मैं भी अपने मन की दाह बुझा लूँ।"

"आपका कथन बिल्कुल अनुचित है। अरे! उन्होंने फल तो पा ही लिया है। आप क्या उन्हें फल दिखायेंगे? वे स्वयं फल भोगते-भोगते ही तो यहाँ तक आये हैं। अब आप जल्दी से उन्हें सुखी कीजिए।"

"नहीं, कुछ दिन इन्हें मजदूरी कराके ही मुझे संतोष होगा।"

"ओह! अभी भी आप नहीं चेत रहे हैं जबकि प्रत्यक्ष में लक्ष्मी के गर्व का दुष्परिणाम आँखों देख रहे हैं। आप.....राज ठसक में डूब रहे हैं इसीलिए आपकी आँखें नहीं खुल रही हैं। जिनके पास छप्पन करोड़ दीनारें थीं, आज चन्द दिनों में ही वे भीख माँगते फिर रहे हैं। यह ज्वलन्त उदाहरण भी आपको सचेत सावधान नहीं कर रहा है। मुझे तो आपका यह हठ किसी प्रकार से भी उचित नहीं प्रतीत हो रहा है और न ही रुचिकर ही लग रहा है।"

कुछ क्षण को वातावरण शान्त रहता है पुनरपि कुमार कहते हैं—

"प्रिये! यद्यपि आपकी बातें सर्वश्रेष्ठ हैं। फिर भी मेरे मन में जो कषाय है, उसको शांत करना है। एक बार इन्हें मजदूरी पर लगा दूँ फिर कुछ दिन बाद परिचय देकर के इन्हें सर्वसम्पन्न कर दूँगा।"

"जैसी आपकी इच्छा.....फिर भी स्वामिन्! मैं आपसे एक प्रार्थना करती हूँ वह आपको माननी ही होगी।"

"बोलिये!"

"आप भाई और भावजों से भले ही मजदूरी कराइये किन्तु जिन्होंने आपको जन्म दिया है, उन वृद्ध माता और पिता से मजदूरी न कराइए उन्हें बैठे ही नौकरी दे दीजिए। यह मेरी करबद्ध प्रार्थना है।"

"ठीक है आपकी यह आज्ञा शिरोधार्य है।"

बुद्धिसेन कुमार महल से निकलकर सीधे अपने दरबार में पहुँचते हैं जहाँ कि वे परदेशी प्रतीक्षा कर रहे हैं। प्रबंधक को बुलाकर कहते हैं—

"देखो! इन लोगों को अपने यहाँ काम में नियुक्त कर लो। ये जो वृद्ध और वृद्धा हैं इनसे भार ढोने का काम नहीं हो सकेगा अतः इन्हें तो बैठे ही वेतन दीजिए और इन छह पुरुषों को और छह महिलाओं को प्रातः दिन उगते ही काम में लगा दीजिए तथा सूर्यास्त तक खूब काम लीजिए। इन्हें एक क्षण भी बैठने नहीं देना और इनके सिर पर खूब ही भार रखना। समझ गये ना!"

"हाँ हाँ! समझ गया मालिक, समझ गया।"

प्रबंधक महोदय कुमार की आज्ञानुसार उसी दिन से उन्हें मजदूरी पर लगा देते हैं और शाम तक कसकर काम लेते हैं और वृद्ध तथा वृद्धा दोनों को एक तरफ बैठे रहने का हुकुम दे देते हैं।

मनोवती शाम को प्रबंधक को बुलाती है और परदेशियों के बारे में सारी स्थिति स्पष्ट पूछती है—

"रानी साहिबा! जैसा हमें महाराज साहब ने आदेश दिया है, मैं अक्षरशः उसका पालन करूँगा आप चिन्ता न करें।"

"कहिये तो सही, क्या आदेश दिया है?"

"हाँ, उन्होंने कहा है कि इन लोगों से बहुत काम लेना। ये लोग सुबह से शाम तक किंचित् भी बैठने न पावें सो मैंने आज ही आधे दिन उनसे खूब मेहनत कराई है बल्कि आप समझो कि मैंने उनसे दिन भर का पूरा काम ले लिया है।"

"अच्छा!.....और वे जो वृद्ध दम्पत्ति हैं उनसे?....."

"उनके बारे में तो सरकार ने बैठे ही वेतन देने का हुकुम किया है।"

"ठीक! देखिये धनपालजी! ये उच्चकुलीन मालूम होते हैं परिस्थिति से लाचार हो मजदूरी करने आये हैं इन्होंने आज तक ऐसा काम कभी नहीं किया है, ऐसा लगता है। अतः इनसे बहुत हल्का नाममात्र का काम लो तथा विश्रांति करने का बहुत कुछ समय भी बीच-बीच में देते रहो।.....ये तो अभी राजठसक में कुछ भी नहीं समझ रहे हैं।..... किन्तु.....उच्चवंशीय लोगों की स्थिति समझना अपना कर्त्तव्य है।"

धनपाल ने समझा था कि ये महारानी जी और भी कड़ा आदेश देंगी किन्तु उनके मुख से ऐसी बात को सुनकर वह ताज्जुब करने लगता है।.....वास्तव में वह महिला है या साक्षात् दया का ही अवतार है।

"जो आज्ञा स्वामिनी जी!"

धनपाल जी अगले दिन से उन लोगों से बहुत ही हल्का बोझा उठवाते हैं और बीच-बीच में कह देते हैं कि तुम लोग बैठो, आराम करो, अभी काम नहीं है, बहुत लोग काम करने वाले हैं।

(९)

मंदिर में परकोटे, मुख्यद्वार, लघुद्वार, बाहर की दीवालें, अन्दर के बहुभाग तैयार हो चुके हैं। अन्दर की दीवालों पर स्वर्ण से, पन्ना, माणिक्य, मरकत आदि से नाना प्रकार के चित्रों का काम शुरू हो गया है। कहीं पर श्री जिनेन्द्रदेव के पंचकल्याणकों का प्रदर्शन इतना भावपूर्ण है कि दर्शक के नेत्र हटाये नहीं हटते हैं। कहीं पर भगवान् ऋषभदेव के

दशभवों का विस्तार दिखाया जा रहा है और कहीं पर चक्रवर्तियों का वैभव, उनका चक्ररत्न अपनी प्रभा के समूह से बहुत दूर तक प्रकाश फैला रहा है। कुमार बुद्धिसेन मनोवती के समक्ष निर्माण के संबंध में और चित्रों के संबंध में विचार-विमर्श कर रहे हैं।

"यदि आप कहें तो एक बड़े हाल में श्री जिनेन्द्रदेव के समवसरण का सुन्दर भव्य चित्र बनवा दूँ और उसमें अनेक प्रकार के नग जड़वाकर बहुत आकर्षक करवा दूँ।"

"अवश्यमेव बनवाइये। उसमें मानस्तंभ, सरोवर, खाई, परकोटे, धूलीसाल कोट, कल्पवृक्ष भूमि, प्रासाद भूमि आदि दृश्य बहुत ही बढ़िया होने चाहिए और गन्धकुटी में माणिक्य रत्न से कमलासन बनवाइये।"

"कल से यह काम भी चालू करा दूँगा। मजदूर, चित्रकार, मिस्त्री आदि काम करने वाले लोग दिन पर दिन दूर-दूर से आते ही जा रहे हैं। वहाँ पहुँचकर जब मैं कार्य की प्रगति देखता हूँ तो बड़ा आनन्द आता है।"

मनोवती कुछ गंभीर हो जाती है और कुछ क्षण चुप रहती है। सोचती है कि देखो! अपने कुटुम्ब के लोग मजदूरी में लग रहे हैं जबकि हजारों आदमी काम में जुटे हुए हैं। यह अनर्थ कैसे रोका जाये? सच है.....कर्मों का फल भोगना ही पड़ता है, इनका भी क्या दोष है? उन लोगों का भाग्य अभी तीव्र रूप से फल दे रहा है.....।

"क्यों, आप क्या सोचने लगीं?"

"स्वामिन्! अब आप अपने कुटुम्बियों को अवकाश देकर परिचय स्थापित कीजिए।"

बुद्धिसेन हँस पड़ते हैं—

"प्रिये! तुम्हें इसकी इतनी चिंता क्यों है?.....अच्छा! कुछ दिन और निकल जाने दो फिर जैसा तुम कहोगी, वैसा ही होगा।"

"अच्छा! तो आप अपनी माँ को हमारे यहाँ भेज दीजिए। मैं हमेशा अकेली रहती हूँ एक वृद्धा महिला यहाँ रहनी भी तो चाहिए.....।"

कुछ घर का काम धंधा करेंगी, मुझे थोड़ी सुविधा मिलेगी.....।

"ठीक, अभी मैं जाता हूँ, भेज दूँगा।"

कुछ क्षण बाद ही वृद्ध हेमश्री महल में आ जाती है। बेचारी अन्य दासियों के साथ कोई भी काम करना चाहती है किन्तु मनोवती उसे रोक देती है। वह घबराकर बोलती है—

"सरकार ने मुझे यहाँ महल में आपके पास काम-काज टहल सेवा करने के लिए भेजा है।"

"हाँ, हाँ! मुझे भी मालूम है अम्माजी! बैठो, अभी तो तुम आराम करो, बहुत सी दासियाँ हैं, अपना-अपना काम कर रही हैं। अभी तो तुम्हारे लायक कोई काम नहीं दिख रहा है जो होगा सो मैं बताऊँगी।"

मनोवती बहुत ही प्रेम से उनसे बोलती है और हर काम से उसे रोक देती है। बड़े प्रेम से उत्तम भोजन कराती है फिर पूछती है—

"अम्माजी, तुम्हारे घर में कौन-कौन हैं?"

हेमश्री सकुचाती हुई धीरे-धीरे बोलती है-"मेरे पतिदेव हैं, छह लड़के और उनकी बहुएं हैं तथा बहुओं के बच्चे-बच्चियाँ हैं।"

"सब कहाँ पर हैं?"

"यहीं पर नूतन मंदिर के पास मालिक ने एक झोंपड़ी बता दी है, हम लोग वहीं पर रहते हैं। बेटे-बहू दिन भर मजदूरी करते हैं ना.....।"

"अच्छा-अच्छा! तो तुम यहाँ आ गई, अब वहाँ खाना कौन बनायेगा?"

"बहुएं अपने आप.....।"

"वे तो सब मजदूरी में लगे हैं ना।"

"हाँ।"

"तो ऐसा करो, लो यह भोजन तुम ले जावो और सबको जिमाकर आ जावो। हाँ, देखो! किसी को मालूम नहीं पड़ना चाहिए, हाँ.....।"

हेमश्री कुछ क्षण के लिए स्तब्ध हो जाती है फिर मनोवती के द्वारा स्वयं हाथ से दिये गये अनेक सरस पकवान, खीर, पूरी, मावा, मलाई आदि से सहित भोजन को डब्बों में भरकर ले जाती है। कुटिया में पतिदेव के समक्ष पहुँचकर सब सामान रखती है। इतने में सभी लड़के और बहुयें भी आ जाती हैं क्योंकि प्रबंधक महोदय इन्हें सबसे पहले वेतन देकर निपटा कर भेज देते हैं। सेठ हेमदत्त इतना सब भोजन पकवान देखकर पूछते हैं—

"तू यह सब कहाँ से ले आयी?"

"आज मुझे राजजमाई ने अपने महल में रानी के पास टहल के लिए भेजा था, वहीं पर मैं दिन भर थी। मैं आपसे क्या कहूँ? उसने मुझसे रत्ती भर काम नहीं कराया। बस भोजन करा दिया और बिठा दिया, उसी ने यह सब भोजन अपने हाथ से दिया है। वह साक्षात् लक्ष्मी है लक्ष्मी!"

हेमदत्त कुछ क्षण तक भावों की तरंगों में डूबने उतराने लगते हैं।

कोई एक दिन ऐसा था जो कि अभी स्मृतिपथ से दूर नहीं हुआ है ओह!!.....क्या वे दिन भूले जा सकते हैं? अभी कितने दिन हुए? शायद एक वर्ष भी तो नहीं हुआ। लेकिन.....लेकिन.....संकट में एक दिन भी वर्ष जैसा निकलता है, लगता है कि कितने युग निकल गये हमें इसी दुरावस्था में.....।

सेठ की आँखों से बरसात शुरू हो जाती है। वे सोचते ही चले जा रहे हैं देखो ना.....हमारे घर में क्या कमी थी? हर दिन उत्तम-उत्तम भोजन! बिना खीर के क्या कभी नौकरों को भी खिलाया गया था? क्या कोई भिखारी दरवाजे से बिना पेट भर भोजन खाये गया था? फिर भी कौन से ऐसे कर्म का उदय आ गया है कि जिससे हम लोगों की यह दुर्दशा हो रही है। ओह!.....क्या पता इसी जन्म का पाप हो, क्या पता किसी बहुत पुराने कर्म का विपाक हो, क्या मालूम?.....

एक समय वह था कि जब छोटी बहू के लिए गजमोतियों से भरा रत्नों का कोठार खोल दिया था, उस बात को अभी बहुत दिन तो नहीं हुए और एक समय यह आया कि हेमश्री ने, बहुओं ने भी लकड़ी के बोझ सिर पर रखकर गाँव में बेचे हैं व हम लोगों ने भी दिन भर जंगल में लकड़ियाँ बीन-बीन कर बोझ बनाये माथे पर रखकर बेचे हैं और.....और फिर भी तो पेट नहीं भर सके। ऐसे दुर्दिन कैसे आ गये?

क्या बुद्धिसेन ही मेरे घर में पुण्यवान् था? क्या उसकी बहू ही लक्ष्मी थी?.....अन्यथा यदि ऐसा न माना जाये तो उनको घर से निकालते ही ऐसा क्यों हो जाता? चन्द दिनों में सारी छप्पन करोड़ दीनारें कहाँ गईं?.....अरे! महिलाओं के गहने जेवर भी तो गिरवी रख दिए गए थे? जब उतने से भी दैव को सन्तुष्टि नहीं हुई तो हवेलियों को गिरवी

रख दिया गया। इतने पर भी दुर्दैव ने विराम नहीं लिया तो जंगलों में जाकर लकड़ियाँ ला-लाकर बेच-बेचकर उदरपूर्ति करना चाही।..... आह! जब इस काम से भी हम लोग पेट नहीं भर सके तो शहर छोड़कर भीख मांगते खाते यहाँ तक आ पहुँचे।

यहाँ भाग्य ने कुछ रहम किया है कि जिससे राजजमाई के मंदिर निर्माण कार्य में मजदूरी तो मिल गई, अभी तक तो कोई भी कहीं भी हम लोगों को नौकरी देना ही नहीं चाहता था.....। अब बेचारी हेमश्री जिसने कभी पच्चीसों दासियों से टहल कराई थी, राजसुख भोगा था, मखमल के गद्दे पर ही लेटती थी।.....कभी जिसको शृंगार कराने के लिए, वस्त्रालंकार कराने के लिए धायें रहती थीं.....हाय, हाय! आज वह राजघराने में टहल करने के लिए जाय? सच है भाग्य की बड़ी विडम्बना है।

पिताजी विचार सागर में मग्न हैं। धनदत्त, सोमदत्त आदि लड़के और धनश्री, सोमश्री आदि बहुएं कुछ ही क्षण में भोजन के बारे में सारी स्थिति समझ लेती हैं और तनिक विश्रांति लेकर अपने-अपने बच्चों को संभाल कर वहीं पर आ जाती हैं। हेमश्री और धनदत्त, हेमदत्त की आँखों से गिरते हुए अविरल अश्रुओं को देखकर अधीर हो उठते हैं-

"इस समय आप क्यों रो रहे हैं?"

आँसू पोंछते हुए—

"कोई खास बात नहीं है।"

"तो भी अकस्मात् आपको रोना क्यों आया?"

"बेटा धनदत्त! सामने रखे हुए इतने भोजन सामान को देखकर सहसा अपने पुराने दिनों की स्मृति ताजी हो उठी.....।"

सभी लोग कुछ एक क्षण, पिछले दिनों को याद कर दुःख से आहत हो उठते हैं। पुनः हेमश्री कहती है —

"अब आप भी कुछ क्षण के लिए अपना उपयोग बदलिए, मुख धोइये और भोजन कीजिए। कृतकर्म जब उदय में आता है, तब उसका फल तो भोगना ही पड़ता है। जितनी शान्ति से उसे भोगा जाता है उतना ही वह आगे के लिए कर्मों का बंध कम करता है। फिर आप तो स्वयं समझदार हैं। अब चिन्ता छोड़िए.....।"

"हाँ, हाँ, माँ ठीक कह रही है पिताजी! अब आप शान्ति से भोजन कीजिए। सदा दिन एक से नहीं रहते हैं। कभी न कभी दिन सुधरेंगे, सुख के बाद दुःख के दिन आये हैं और कभी सुख के दिन भी आ सकते हैं।"

हेमश्री पतिदेव का मुख धुलाकर उन्हें भोजन परोसती है। तब तक धरसेन केले के बड़े-बड़े पत्ते तोड़कर लाकर सभी के आगे पत्तल रख देता है। माँ सभी को एक साथ भोजन करा रही है। छोटे-छोटे बच्चे भी आज बहुत दिन बाद गुझिया-लड्डू पाकर खुश हो रहे हैं और नाच-नाचकर खा रहे हैं। हेमश्री शाम को वापस महल में मनोवती के पास पहुँच जाती है। मनोवती प्रतिदिन उत्तम-उत्तम भोजन बना-बनाकर हेमश्री के हाथ से सबके लिए भेज देती है और किसी को भी पता नहीं चलने देती है।

एक दिन सहज ही मनोवती कहती है —

"अम्मा जी! आवो, जरा मेरे केश तो देखो और चोटी कर दो।"

"बहूरानी! आप करोड़पति की बहू और मैं एक दरिद्रा।.....दीनरंक हुए हम लोग दर-दर फिर रहे हैं, आपके यहाँ आकर अपना पेट भर रहे

हैं।.....मेरा तो आपके पास आने का मुख नहीं पड़ता है।"

इतनी बात सुनते ही मनोवती के नेत्र सजल हो गये। इस संसार में यह लक्ष्मी अतिशय चंचल है। अहो! इसका क्या विश्वास करना? देखो ना.....यह प्रत्यक्ष में मेरी सासू है और मैं इसकी पुत्रवधू हूँ किन्तु हाय!.....इनकी सम्पत्ति नष्ट हो गई इसलिए यह मेरे निकट आने में सकुचा रही हैं। धिक्कार हो! इस धन को धिक्कार हो!.....पुनः दिलासा देते हुए कहती है —

"कोई बात नहीं, चिन्ता मत करो, आवो.....आवो।"

कुछ क्षण के लिए हेमश्री सकुचाई खड़ी रहती है जैसे कि मानो उसके पैर ही नहीं आगे बढ़ना चाहते हैं।

"आ जाओ, अम्मा जी! क्यों संकोच करती हो? आ जाओ।"

हेमश्री पास आकर अपने कपड़े संभालकर इस तरह बैठती है कि जिससे बहूरानी को अपने कपड़ों का स्पर्श न हो जावे। पुनः काँपते हुए हाथों से उनकी चोटी की रेशमी डोरी खोलती है और रेशम जैसे मुलायम केशों को खोलने लगती है। कुछ क्षण में ही उसकी आँखों से अश्रु की झड़ी लग जाती है और हेमश्री अपने अविरल अश्रुओं को अपने अंचल में ही समेटती चली जा रही है। कुछ देर में उसे सिसकी आने लगी और वह अपने को नहीं संभाल सकी, फफक कर रो पड़ी.....।

"ऐ!! यह क्या?.....अम्मा जी! तुम क्यों रोने लगीं..... बोलो तो सही।"

बेचारी हेमश्री कुछ दूर सरक कर अपने आंचल से अपना मुँह ढँककर फूट-फूटकर रोने लगी मानों उसके धैर्य का बांध ही टूट गया हो। मनोवती ने जैसे-तैसे करके उसे सांत्वना दी और रोने का कारण

कहने को कहा—

"रानी साहिबा! मैं.....यदि पहले की अपनी बातें कहूँ तो आज उन पर कोई विश्वास नहीं करेगा। किसी को भी मेरा पहले का जीवन सच नहीं लगेगा।

"नहीं, नहीं ऐसी बात नहीं है, तुम कहो तो सही! तुम कुछ भी चिन्ता मत करो और सभी बातें ज्यों की त्यों कहो।"

तब हेमश्री सामने एक तरफ बैठकर हाथ जोड़कर कहती हैं—

"महारानी जी! हम लोग ऐसे रंक नहीं थे। बल्लभपुर शहर में हमारे पति बहुत बड़े विख्यात जौहरी थे। मेरे घर में छप्पन करोड़ दीनारें होने से छप्पन ध्वजाएं फहराती हुई हमारे पतिदेव का यश विस्तार रही थीं। हमारे सात पुत्र थे जिसमें ये सबसे बड़ा धनदत्त है जो कि साथ में है और सबसे छोटा पुत्र बुद्धिसेन था उसका ब्याह होकर..... हाय!.....अभी एक वर्ष भी नहीं हुआ होगा.....।"

फिर वह सिसक-सिसक कर रो पड़ती है, बोल नहीं पाती है किन्तु मनोवती उस समय बहुत ही कारुण्य मुद्रा से श्रवण कर रही है—

"बोलो, बोलो! अम्मा जी! न घबराओ, सभी पर सब तरह के दिन आ सकते हैं, देखो ना! भगवान् रामचन्द्र को राजगद्दी होने वाली थी किन्तु वन की शरण लेनी पड़ी।.....इसलिए धैर्य रखो और पूरी बात कहो!"

बेचारी जैसे-तैसे हृदय थामकर सिसकते हुए ही बोलती है-"बहूजी! मैं क्या बताऊँ? उसकी शादी हस्तिनापुर में हो गई। बहुत बड़े घराने की बहू मेरे घर में आ गई। मैं क्या बताऊँ.....वह तो साक्षात् लक्ष्मी ही थी।.....उसने ऐसी प्रतिज्ञा ली हुई थी कि जब मैं गजमोती

भगवान् के सामने चढ़ाऊँगी, तभी भोजन करूँगी। मेरे पतिदेव ने कोठार खोल दिया, मोतियों के ढेर के ढेर लगे हुए थे। उसने गजमोती चढ़ाये और पुनः खाना खाया। हाय रे!

फिर बेचारी रो पड़ती है।

"अम्माजी! तुम इतना न घबराओ....."

"कुछ पूर्व के पाप कर्म का तीव्र उदय आ गया.....तब घर से हमारे प्यारे पुत्र को निकाल दिया.....गया। वह हस्तिनापुर चला गया, वहाँ से उसकी पत्नी भी उसके साथ हो ली, अब तक हम लोगों को पता नहीं चला कि वे दोनों कहाँ हैं?"

फिर माथे पर हाथ रखकर बिलख-बिलख कर रोती है—

"हाय बेटा! तुम कहाँ चले गए? रानी जी! मैं सच्ची कहती हूँ तुमसे, जिस दिन से वे बेटे और बहू घर से गये हैं बस उसी दिन से मेरी लक्ष्मी कहाँ चली गयी? कुछ पता नहीं..... कुछ ही दिन में सारी सम्पत्ति समाप्त हो गई। हाय! हाय! हम रंक बने मारे-मारे फिर रहे हैं। आपके केश खोलते ही आपके शिर में यह एक चिह्न जो मैंने देखा मेरी बहू के शिर में भी ऐसा ही चिह्न था।" अतः इसे देखते ही मेरा जी भर आया.....।"

मनोवती ने सारी बात सुन ली यद्यपि हृदय द्रवित हो उठा था फिर भी उसने मन की बात मन में ही छिपा कर बनावटी क्रोध दिखाते हुए कहा-"अब क्या हमें तू अपनी बहू बना रही है?.....अरी चमेली! इधर आ।"

दासी काम छोड़कर दौड़कर आती है—

"हाँ जी, आ गई! क्या आज्ञा है महारानी जी?"

"तू इस वृद्धा को महल से बाहर कर दे!"

"जैसी आपकी आज्ञा!"

चमेली हेमश्री का हाथ पकड़ कर जल्दी-जल्दी उसे महल से बाहर निकाल देती है और आकर बोलती है—

"निकाल दिया, महारानी जी! निकाल दिया।"

हेमश्री महल के बाहर खड़ी-खड़ी सोच रही है कि यह क्या हो गया? अब क्या होगा? मैं अपने पतिदेव को या पुत्रों को कैसे मुँह दिखाऊँ? जाकर उनसे क्या कहूँ? कुछ क्षण रोकर कलेजा शांत करके स्खलित पग रखते हुए जैसे-तैसे अपनी झोपड़ी में पहुँचती है। हेमदत्त को कुछ आहट होने से पूछते हैं-कौन है? तब वह अन्दर पहुँचकर फूट-फूटकर रोने लगती है।

"आखिर हुआ क्या? बोलो तो सही। केवल रोने मात्र से मैं क्या समझ सकूँगा?"

जैसे-तैसे आँसू पोंछते हुए और सिसकते हुए बोलती है—

"मालकिन ने मुझे महल से निकाल दिया।"

"क्यों?"

पति के बहुत कुछ धैर्य बँधाने के बाद वह धीरे-धीरे सारा किस्सा सुना देती है।

"अफसोस! तूने गजब कर दिया।"

हेमदत्त क्रोध में आपे से बाहर हो जाते हैं इसी बीच में एक-एक करके छहों लड़के और बहुएँ भी आ जाती हैं और उन्हें भी सारा हाल सुना दिया जाता है। अब क्या देखना?....एक-एक में एक से बढ़कर

क्रोध भभक उठता है। सभी एक-एक करके हेमश्री को फटकारना शुरू कर देते हैं इतना ही नहीं.....।

"हाय! तूने यह क्या कर डाला? कौन तो बहू और कहाँ के पुत्र? और कहाँ की तू पहिचान कराने लगी?"

"हाय! हम लोग दर-दर की ठोकरें खाते-खाते यहाँ आये, जरा सी बैठने की जगह मिली, पेट को सहारा मिला और तूने सब वापस गँवा दिया।"

"जा, जा! चली जा इस झोपड़ी से, जल्दी निकल जा। अब हम लोग भी इस झोपड़ी में तुझे रहने नहीं देंगे।"

धनदत्त उठकर उसे धक्का देकर निकालने की कोशिश करता है कि वह शोक में पागल हो जमीन पर धड़ाम से गिर पड़ती है। कोई पुत्र पत्थर उठाकर उसे मारने दौड़ता है तो कोई कंकड़ फेंकता है तो कोई लकड़ियों से पीटने लगता है। कोई धक्का देता है तो कोई बहू लात से मारने दौड़ती है। हेमदत्त अब चुपचाप पत्नी पर होने वाले असह्य अत्याचार को देख रहे हैं और कुछ सोच-सोच फूट-फूटकर रो रहे हैं। हेमश्री पुत्रों के और पुत्र-वधुओं के द्वारा मार खाते हुए उनकी गालियाँ सुनते हुए बहुत ही घबरा उठती है और जोर-जोर से चिल्लाने लगती है—

"हाय! मैं मरी, मैं मरी! हाय, हाय! मेरा कोई रक्षक नहीं है। बचाओ-बचाओ! भगवान मेरी रक्षा करो। मैंने क्या पाप किए हैं? जो कि एक दुःख से नहीं छूटी और दूसरा छाती पर आ पड़ा। अब मैं कहाँ जाऊँ? क्या करूँ? अरे रे! निपूतों! तुम सब मिलकर मुझे क्यों मार रहे हो?..... अकेला मेरा भाग्य ही खोटा है क्या?.....

अरे प्यारा बेटा बुद्धिसेन! तू कहाँ है? तेरे जाने के बाद ही तो मेरी

मिट्टी पलीत हुई है। मैं न घर की रही न दर की।

इतना सुनते ही लड़कों का क्रोध और भी अधिक भभक उठा। वे सभी आपे से बाहर हो गये और जोर-जोर से बकने लगे —

"जा, जा, तू उसी बुद्धिसेन को ढूंढ़! अब यहाँ हम लोगों के पास रहने की जरूरत नहीं है। बस जब देखो, जब बुद्धिसेन लाडला बेटा और मनोवती। इसके सिवाय और तुझे कुछ दिखता है? और जभी तो वहाँ जाकर भी गम नहीं खाई। रानी साहिबा के सिर में भी तुझे बहू की खोपड़ी ही दिखाई देने लगी और तभी तो सारा अनर्थ करके आ गई।"

"अरे दुष्टों! तुम सबने मिलकर ही तो उसको निकाला है और उसी पाप का फल भोग रहे हो। फिर भी उसके नाम से तुम लोगों को आग लगती है? तुम सब बड़े कर्महीन हो और बुद्धिहीन हो। तुम्हारी बुद्धि पर पत्थर पड़ गये हैं तभी तो माँ को पत्थर से मार रहे हो।"

क्रोध के आवेश में आकर हेमश्री आगबबूला हो उठती है। इतने में ही सोमदत्त, विनयदत्त आगे बढ़कर जबरदस्ती उसे घसीट-घसीट कर दरवाजे तक पहुँचा देते हैं और बहुयें आगे बढ़कर बड़बड़ाती हुईं दरवाजे की साँकल लगा लेती हैं।

"हाय! मैं कहाँ जाऊँ? कपूतों! तुमको नव-नव महीने उदर में रखा है। तुम मेरी यह दशा कर रहे हो? मैं मर जाऊँगी। पतिदेव! तुमने तो स्वप्न में भी कभी एक शब्द तिरस्कार का नहीं कहा था और अब तुमको भी क्या हो गया है? खोलो-खोलो, दरवाजा खोलो।"

बेचारी हेमश्री फड़फड़ाती हुई बेहोश हो जाती है और कुछ देर बाद होश में आती है तब देखती है कि मैं घसीट कर अपनी झोंपड़ी के दरवाजे से दूर पर कर दी गई हूँ। वह कुछ एक क्षण विचार कर उठकर

धीरे-धीरे वन की ओर जाने की राह पकड़ती है और बार-बार मार्ग में गिर पड़ती है, तब मार्ग में एक झाड़ के नीचे बैठकर अकेली जोर-जोर से करुण क्रंदन करते हुए विलाप करती है —

"अरे दुर्दैव! तुझे और भी जितना दुःख देना है एक साथ ही दे ले। खूब दुःख दे ले। अरे निष्ठुर विधाता! तुझे दया तो कैसे आएगी? क्योंकि मैंने ही तो पूर्व जन्म में ना, ना पता नहीं इसी जन्म में कुछ पाप संचित किया है, उसका फल तो मुझे ही भोगना पड़ेगा। हे भगवन्! तुमको भी मेरे ऊपर करुणा नहीं आती है। प्रभो! तुम जो जगत् में करुणासागर के नाम से प्रसिद्ध हो। हे तीनलोक के नाथ जिनेन्द्रदेव! अब आप मेरे ऊपर दयादृष्टि करो। अब मैं इतने अधिक दुःखों को सहने में समर्थ नहीं हूँ।

हाय! मेरा प्यारा बेटा बुद्धिसेन! तू इस जन्म में मुझे मिलेगा या नहीं? एक बार स्वप्न में ही मुझे दर्शन दे दे। अपनी माँ की ऐसी दुर्दशा को तू एक बार तो देख ले। तू कहाँ है? किस देश में है? तू किस स्थिति में है? अरे तू सुखी है कि तू भी दुःखी है? अपनी स्थिति को तो बता दे?

मेरी बहूरानी मनोवती! तुम भी कैसी हो? तुम्हारी प्रतिज्ञा कैसे पल रही है? तुमने तुम्हारे पीहर के सुख को ठोकर मार दिया, तुम्हें गजमोती कहीं मिली होगी या नहीं? बताओ तो सही। तुम्हारे अपमान से ही.....तुम्हारा घर में आना रोक देने से ही तो हम सबों ने यहाँ तक दुर्दिन देखे हैं।"

कुछ देर तक ठण्डी साँस लेकर बैठ जाती है। फिर-फिर छोटे बेटे और बहू को याद कर रोने लगी। आँखें लाल-लाल हो गई हैं और ऊपर से खूब ही सूज गई हैं। मुख की सूरत अत्यन्त विरूप हो रही है।

सारी धोती आँसुओं से भीग चुकी है। पेट खाली है और अन्न का ठिकाना भी नहीं रहा है। सोच रही है–अब पुनः मुझे भीख माँगकर ही तो पेट भरना पड़ेगा।

"अरे विधाता! अब तू मुझे उठा ले, अब मैं अधिक दुःख नहीं देख सकूँगी।.....बेटे तो बहुओं की वजह से भी कठोर अति कठोर हो सकते हैं लेकिन पतिदेव को इतना क्रोध कैसे आ गया? उनके हृदय में भी मेरे प्रति करुणा भाव क्यों नहीं रहा?.....ओह! मैं बहुत बड़ी भूल कर रही हूँ। मेरे पाप कर्मों के उदय से ही तो सब निष्ठुर हो रहे हैं। दैव निष्ठुर हैं, पतिदेव निष्ठुर हैं, छह–छह बेटे हैं वे भी निष्ठुर हैं और सभी बहुएं निष्ठुर हैं। और तो क्या?.....जिसने इतनी सहानुभूति, इतनी करुणा दिखलाई थी वह दयावन्ती देवी राजजमाई की राजपत्नी भी तो निष्ठुर हो गयीं। अब केवल मात्र भगवान तेरा ही एक सहारा है। अब इस पर्याय में मेरा कोई नहीं है। जब तक धन था, हजारों नौकर काम करते थे, जगह–जगह व्यापार चलते थे। तब मैं भी क्या किसी रानी–महारानी से कम सुखी थी? मुझे क्या कुछ कमी थी?.....खैर, अब तो जो दिन आये हैं, उनसे ही तो निपटना है।

प्रभो! दयानिधे! करुणा करो, मुझे दया की भीख देवो। मैं कब तक इस पापी पेट के पीछे दर–दर भीख माँगती फिरूँ? हाय!.....पतिदेव और सात–सात पुत्रों के जीवित रहते हुए भी मैं भीख माँगूँ? अरी लक्ष्मी? तू वैश्या से भी अधिक अविश्वसनीय है। आज किसी की, कल किसी की। तुझे धिक्कार हो! धिक्कार हो!.....अरे दुर्दैव! तुझे भी धिक्कार हो! इस मेरे हीन–दीन जीवन को भी धिक्कार हो!.....

बेचारी हेमश्री इधर अकेली बैठी–बैठी अपने इस जीवन से ऊब

उठती है और फिर सहसा सोचने लगती है कि इस दुःखी जीवन से मर जाना ही अच्छा है। फिर–फिर अकस्मात् ही बुद्धिसेन के मुख को देखने के लिए उत्कंठित हो उठती है और उनका मन पंछी तड़पने लगता है—

"बेटा तू कहाँ है? एक बार मुझे किंचित् सान्त्वना दे दे। इस जीवन में मुझे फिर अब तेरा सलोना मुख देखने को मिलेगा या नहीं? बोल तू बोल! जहाँ कहीं भी हो, एक बार बोल दे! नहीं तो मैं इस जीवन को, इस निंद्य पराधीन स्त्री पर्याय को समाप्त कर दूँ। कहीं कुएं–बावड़ी में पड़कर या गले में फाँसी लगाकर मर जाऊँ। एक बार–एक बार तो इस संकट से छुटकारा पा लूँ। अफसोस! मैं क्या कह रही हूँ? क्या मरने से दुःख छूट जायेंगे? अरे! जो बाँधे हैं कर्म मैंने, उनका फल तो आज क्या, कल या परसों या किसी जन्म में भोगना ही पड़ेगा।

हे त्रिभुवन के स्वामी! आप ही इन दुष्कर्मों से छुटकारा दिला सकते हैं, अन्य कोई नहीं। अब मेरी रक्षा करो, रक्षा करो प्रभो! मुझे सद्बुद्धि दो।"

इधर हेमश्री को निकाल देने के बाद हेमदत्त सोच रहे हैं कि हाय! मैंने यह क्या किया? मैं इन आँखों से उसका इतना अपमान कैसे देखता रहा? मुझे आज क्या हो गया?....

"अरे कपूतों! तुमने अपनी माँ को इतना क्यों मारा? उसे झोपड़ी से बाहर क्यों निकाल दिया? हाय रे दुर्दैव! तू यह सब क्या कर रहा है? क्या मेरा जीवन अब यही दृश्य देखते–देखते निकलेगा। मैं तो मर जाऊँगा!.....ओह!! यह क्या हो गया? वह बेचारी कहाँ जायेगी? कहाँ रहेगी? क्या खाएगी और क्या पियेगी?....."

"यह दुष्ट बुड्ढा भी अब चैन नहीं लेने देगा! उठो! आप लोग अब

इसे भी निकाल बाहर करो। मेरे से अब इसका रोना, बिलखना और चिल्लाना नहीं सहन हो रहा है।"

"अरी बहू! तू क्या बक रही है? तुझे बहुत ही साहस हो गया है जो तू आज सास-ससुर के अनादर पर ही तुल गई है। सासू को तो निकाल दिया और अब मुझे भी निकालना चाहती है। लो, तुम लोग सुख से रहो, मैं भी जाता हूँ। अरे! जब इतने दिन दर-दर पर भीख माँगते फिरे हैं तो कुछ दिन और माँग लेंगे।"

सेठ जी उठकर जाने को होते हैं कि छठा पुत्र धरसेन उठकर दौड़कर हाथ पकड़ लेता है और चिपट कर जोर-जोर से रोने लगता है। हेमदत्त कुछ देर बाद बेटे के आँसू पोंछकर अपना मन मसोस कर बैठ जाते हैं परन्तु हेमश्री की याद में बार-बार बेचैन हो उठते हैं। फिर.....कुछ क्षण बाद बुद्धिसेन पुत्र को याद करके जोरों से विलाप करने लगते हैं—

"अरे बेटा बुद्धिसेन! जब से मैंने तेरे को घर से निकाला है तभी से तो ये दुर्दिन आये हैं। उस समय मेरी बुद्धि कैसे भ्रष्ट हो गई? मुझे क्या हो गया था?.....ओह!.....सच है-विनाशकाले विपरीत बुद्धिः....बहू मनोवती! तू कैसी धर्मात्मा थी, तेरी प्रतिज्ञा की निन्दा का ही फल तो हम सभी भोग रहे हैं। अब एक बार इस जीवन में तुम दोनों मुझे मिल जावो! बस! मैं इसी आशा में अपने प्राण टिकाये हुए हूँ अन्यथा अब मैं जीवित नहीं रह सकता था.....।

"पिताजी! अब आप चुप रहो, बिल्कुल चुप हो जावो। दो-तीन घण्टों से लगातार आपस में कुहराम मचा हुआ है। अब चुपचाप बैठे रहो.....।"

सेठ हेमदत्त बिल्कुल चुप हो जाते हैं लेकिन चुपचाप बिना

खाए-पिए अपनी फटी चादर में मुँह छिपाकर लेट जाते हैं। वे लाख कोशिश करते हैं कि अश्रु बंद हो जावें किन्तु आँखों से आँसुओं की धारा चालू ही है।

पुत्र धनदत्त आदि भी जब शांत होते हैं, तब अपने द्वारा किये गये माता के अपमान को स्मरण कर रो पड़ते हैं। सभी पश्चात्ताप करने लगते हैं कि हाय! हमने यह क्या कर डाला? यह सब दुर्दैव का ही विचित्र खेल है, ऐसा कहकर संतोष की साँस लेकर सोमश्री आदि द्वारा बनाये गये कुछ रूखे-सूखे भोजन को करके बैठ जाते हैं।

(१०)

मनोवती अपने महल में कुछ चिंतित सी बैठी हुई है। दासियाँ अपने काम में लगी हुई हैं। कुछ देर बाद मनोवती पूछती है—

"चमेली! ओ चमेली!"

"जी हाँ, आई!"

"अरी क्यों री! आज अभी तक चंपा नहीं आई?"

"आती ही होगी!"

इसी बीच में चंपा आकर महारानी जी को नमस्कार करके बैठ जाती है और कुछ कहना चाहती है किन्तु रुक जाती है—

"बोल ना! क्या हुआ?"

"महारानी जी! वहाँ तो महान् उत्पात हो गया।"

"ऐं! उत्पात! क्यों उस बुढ़िया ने वहाँ जाकर क्या कहा?"

"मुझे यह तो कुछ मालूम नहीं किन्तु सभी परदेशियों ने मिलकर उस बुढ़िया को बहुत मारा और धक्के-मुक्के दे देकर उसे गिरा दिया।

फिर बेचारी को खींच-घसीटकर झोंपड़ी से बाहर कर दिया।

"अच्छा!.....और फिर वह कहाँ गई?"

"पता नहीं, वह तो कहीं जंगल की तरफ चली गई है।"

"हाय! दुर्दैव! तू बड़ा ही निर्दयी है।.....अच्छा, चम्पा! तू जल्दी से जा और स्वामी को यहाँ जल्दी से जल्दी आने की सूचना कर दे।"

"जो आज्ञा!"

कुछ देर बाद कुमार बुद्धिसेन पधारते हैं। मनोवती विनय से उठकर पतिदेव का स्वागत करती है, उनके उचित आसन पर विराजने के बाद आप स्वयं पास में ही बैठ जाती है।

"कहिए! क्या आज्ञा है?"

मनोवती हाथ जोड़कर निवेदन करती है-

"स्वामिन्! आपके बड़े भाई पिता के समान हैं। वे सिर पर भार ढो रहे हैं और आप अपनी आँखों से देख रहे हो। बस, अब बस होवे, अब आप शीघ्र ही उन सबको बुलवा लो।"

मुस्कराकर—

"प्रिये! मैं इन लोगों से खूब ही मजदूरी करवाऊँगा। इन लोगों ने मेरे से बहुत ही गर्व किया है। मैं जब तक अपने मन की पूरी नहीं निकाल लूँगा, तब तक परिचय नहीं कराऊँगा।"

"यदि आप अब मेरी नहीं मानोगे, तो देखो मैं क्या करूँगी?"

कुछ क्रोध में आ जाती है। तब बुद्धिसेन हँस पड़ते हैं और पूछते हैं-"क्या करोगी? बताओ!"

"आपको हँसी आ रही है और मुझे गुस्सा आ रहा है। अफसोस है कि आप राजलक्ष्मी के गर्व में अपने कर्तव्य को बिल्कुल भूल रहे हो।

आपके जीवन को धिक्कार है! आप अपने भाईयों से मजदूरी करा रहे हो और अभी तक आपकी हविश पूरी नहीं हुई है।....आपको शर्म आनी चाहिए।.....मैं सच कहती हूँ कि अब मुझसे यह सब देखा नहीं जाता है। अब आप बैठे रहिए, मैं उन सभी को अभी-अभी यहाँ पर बुलवाए लेती हूँ और उन्हें उत्तम वस्त्राभूषण पहनाकर कुछ धन सम्पत्ति सौंपती हूँ।

क्या सब आपकी ही चलेगी, मेरी कुछ भी नहीं चलेगी?.....मैं खूब ही आपकी बुराई करूँगी। महाराज यशोधर के पास मैं स्वयं जाकर सारी स्थिति कहूँगी कि आपके जमाई अपने भाई-भावजों से मजदूरी करवा रहे हैं। आपको जो जंचे सो कीजिए और मुझे भी जो जँच रहा है.....उचित प्रतीत हो रहा है सो मैं करूँगी, अब मैं भी आपकी एक नहीं सुनूँगी।'

बुद्धिसेन मनोवती का गुस्सा देखकर और उसकी इस तरह की धमकी सुनकर सिहर उठते हैं। मन में सोचते हैं कि अब इसको पूर्णतया रोष उत्पन्न हो चुका है। अब यदि मैं इसकी नहीं मानूँगा तो निश्चित ही यह कुछ न कुछ उपाय अवश्य करेगी और राजा तक मेरी बात पहुँचाकर मेरी भर्त्सना करवायेगी। कुछ क्षण तक माथा नीचे करके सोचते रह जाते हैं। मनोवती पुनः बोल उठती है—

"अब मैं इस घटना को देख सकने के लिए एक क्षण भी समर्थ नहीं हूँ। या तो आप उन्हें बुलवाइये या मैं बुलवाऊँ?"

"प्रिय बल्लभे? आप इतनी अधिक नाराज न होइए! मैं.....आपकी आज्ञा के अनुरूप ही कार्य करूँगा।"

"तो जल्दी कीजिए, अभी-अभी सबको बुलवाइये!"

"प्रिये! अभी दिन में यह काम ठीक नहीं रहेगा। थोड़ा अंधेरा पड़ते ही किंकरों को भेजकर सबको बुलवाये लेता हूँ। अब आप जरा

सी भी चिन्ता न करें।"

दिन अस्त होते ही मालिक की आज्ञा से कर्मचारी वहाँ झोपड़ी में पहुँचता है। जहाँ पर कई घण्टों से मारपीट का और रोने-धोने का अत्यन्त कलहकांड होकर अभी-अभी ऊपर से किंचित् शांत वातावरण हुआ ही था कि कर्मचारी पहुँचता है। उसे देखकर सबके होश उड़ जाते हैं।

"हाँ, तुम लोगों को स्वामी ने बुलाया है, जल्दी चलो। सभी लोग बहुत ही जल्दी चलो।"

हेमदत्त की जरा सी आँखें झपकी ही थीं कि कर्मचारी की आवाज सुनकर चौंक उठते हैं।

"कौन है?"

"मैं राजा का चपरासी हूँ।"

"क्या आदेश है?"

"बस, चलिए, तुम सभी को महाराज ने अभी-अभी बुलाया है।"

हाय!.....अब और यह क्या बला आ गई? अरे! हेमश्री न जाने क्या कह आई है कि जो हम सबको ही बुलाया गया है। पता नहीं अब क्या होगा?

सभी बेचारे जहाँ के तहाँ कीलित जैसे हो जाते हैं। ऐसा मालूम पड़ता है कि किसी के भी शरीर में प्राण नहीं हैं। सभी निश्चेष्ट हो गये हैं इतने में कर्मचारी पुनः बोलता है-

"हाँ भाई! क्या बात है? तुम लोग देरी क्यों कर रहे हो?"

सेठ हेमदत्त उठकर जैसे-तैसे साहस बटोर कर पूछते हैं—

"भाई क्या बात है? हम सभी को एक ही साथ मालिक ने क्यों बुलाया है? क्या आप.....बता सकेंगे?"

"मुझे क्या मालूम? मुझे तो बस इतना ही आदेश मिला है कि नम्बर १०१७ वाली झोपड़ी के सभी मजदूरों को मेरे महल में जल्दी ही ले आवो।!"

"अरे बेटा धरसेन! ओ धरसेन! जा बाहर देख तो सही, तेरी माँ कहाँ है?"

"अब उसे और भी आपत्ति में क्यों डालो पिताजी! पता नहीं कि उसने वहाँ क्या-क्या कहा है कि जिससे हम सबको बुलवाया गया है और पता नहीं कि अब वहाँ क्या-क्या दंड भुगतना पड़ेगा, अभी तक भीख माँगकर या मजदूरी करके पेट तो भर रहे थे और क्या पता अब जेलों में सड़ना पड़े?"

धरसेन बीच में ही बाहर निकल जाता है और आगे बढ़कर कुछ दूर जाता है कि सामने के झाड़ के नीचे से करुण क्रंदन की आवाज आ रही है। उसी आवाज के सहारे उस झाड़ के नीचे पहुँच जाता है। देखता है माँ खूब छाती कूट-कूटकर रो रही है। वह उससे चिपट जाता है और वह भी जोर-जोर से रोने लगता है। माँ को अंधेरी रात में बेटे का सहारा मिलते ही वह कुछ शाँत होती है। तब धरसेन सिसकियाँ भरते हुए कर्मचारी के आदेश को सुना देता है। सुनते ही माता अत्यर्थ रूप से काँपने लगती है। फिर बोलती है—

"बेटा! मैंने जो कुछ किया है, उसका फल मुझे ही भोगना उचित है। सभी को क्यों? चलो, चलो, कुछ भी होगा तो मैं ही अकेली निपटूँगी। बीच में सभी को दंड का भागीदार नहीं बनाऊँगी चलो, बेटा!.....मैं चल रही हूँ।

"माँ! तुम्हें चलने की शक्ति कहाँ है? तुम मेरी पीठ पर बैठो, मैं

तुम्हें ले चलूँगा।"

"नहीं, बेटा! मैं चलूँगी, पैदल चलूँगी, तू चिंता मत कर।"

धरसेन का हाथ पकड़कर हेमश्री उठती है और चल पड़ती है। अंधेरे में कई जगह ठोकर और टक्कर लगती है। "बेटा! अभी न जाने कितने दिन अपने भाग्य में ठोकर खाना लिखा है। कौन जाने?"

"माँ! तुम ही यदि इतनी अधीर होवोगी तो हम लोगों का क्या होगा?"

"क्या करूँ बेटा! अब धैर्य नहीं रहा, अब तो बार-बार यही भाव आता है कि अपघात करके मर जाऊँ किन्तु बस एक बुद्धिसेन का मोह मुझे रोक रहा है।"

धीरे-धीरे बातें करते दोनों माँ और बेटे अपनी झोंपड़ी के सामने पहुँचते हैं, तब तक सब लोग साहस करके उठ खड़े हो जाते हैं। माता को सामने देखते ही लड़के भड़क उठते हैं—

"अरी माँ! तू वहाँ क्या कह आई है? चल, अब सबके गले में फाँसी लगवायेगी.....देख—"

सेठ हेमदत्त बीच में बात काट देते हैं—

"बस बस, अब हल्ला-गुल्ला बंद करो, चुपचाप रास्ते में चलो। बहुत हो लिया.....जो होना होगा सो होगा? अब ज्यादा बकवास मत करो। हाँ, मेरी मानो तो सब लोग णमोकार मंत्र का जाप करते चलो।"

सब लोग चुपचाप मन में, महामंत्र का स्मरण करते हुए चले जा रहे हैं।

सिपाही के साथ-साथ सब लोग महल के अन्दर घुसते हैं तत्काल ही फाटक बंद कर दिया जाता है। अब तो सबके सब एकदम

सन्न हो जाते हैं और निश्चित कर लेते हैं कि हम लोगों पर भारी संकट आ गया है। राजमहल के समान उस महल में भी चारों तरफ सुन्दर-सुन्दर स्थल दर्शनीय हैं परन्तु वे बेचारे आकस्मिक संकट की भावी आशंका से थर-थर, थर-थर कांपते हुए एक से एक दरवाजे पार करते चले जा रहे हैं।

सभी लोग अन्दर के माणिक चौक में पहुँचते हैं जहाँ पर राजा बुद्धिसेन अपनी रानी मनोवती के साथ रत्नजटित उच्च आसन पर सुखासन से बैठे हुए हैं। मालूम होता है कि साक्षात् इन्द्र ही अपनी इन्द्राणी के साथ अमरपुरी की सुधर्मा सभा में विराजमान हैं। उनको देखते ही ये लोग वज्र से आहत हुए के सदृश एक कोने में ही खड़े रह गये, आगे नहीं बढ़ पाए।

सामने सबको देखकर बुद्धिसेन तत्क्षण ही आसन से उठ खड़े हुए और जल्दी-जल्दी आगे बढ़कर हाथ जोड़कर 'हे पूज्य पिता!....कहते हुए और नमस्कार करते हुए सेठ हेमदत्त के चरणों में पड़ गए और मनोवती भी हाथ जोड़कर नमस्कार करती हुई उन्हीं के साथ खड़ी हुई हेमश्री के चरणों में पड़ गई।

"अरे अरे, यह क्या? मैं रंक मजदूर.....और आप राजा।....."ऐसा बोलते हुए और घबराते हुए हेमदत्त जल्दी-जल्दी काँपते हुए हाथों से उन्हें उठाने लगा—

"पिताजी! मैं वही आपका पुत्र हूँ कि जिसे आपने घर से निकाल दिया था।"

सेठ जी एकदम आश्चर्यचकित हो स्तब्ध रह जाते हैं और उसे गले से लगा लेते हैं। उनका एकदम जी भर जाता है और वे बड़ी जोरों से रो

पड़ते हैं। बुद्धिसेन सिसकी भरने लगते हैं। उस समय ऐसा मालूम पड़ता है कि इतने दिनों से सेठ हेमदत्त ने जो भी दुःख भोगा है, वे सब एकदम आँसू के बहाने से अब सारे के सारे बाहर निकलकर कहीं को प्रयाण कर रहे हैं अथवा पुत्र और पुत्र-वधू के वियोग से जो पश्चात्ताप, संताप और संक्लेश को किया है, वह सब हृदय के बाँध को तोड़कर बाहर एक साथ आता चला जा रहा है। कुछेक क्षण तक पिताजी पुत्र को अपनी छाती से चिपकाये हुए हैं और छोड़ नहीं रहे हैं उन्हें ऐसा लगता है कि कहीं फिर यह मुझसे विमुक्त न हो जाये।.....हेमदत्त अपनी भुजाओं से अलग करते हुए उसके मस्तक पर हाथ फेरते हैं और उसकी आँखों के अश्रुओं को पोंछते हुए बोलते हैं—

"बेटा! मैंने तुझे निकालकर बहुत ही दुःख दिया है और जिसके फलस्वरूप हम सभी ने भी असंख्य दुःख झेले हैं....."।

कुमार बुद्धिसेन माता के चरणों का स्पर्श करते हैं और हेमश्री भी पुत्र को अपने दिल से लगाकर अपने आँसुओं से ही मानों उसका अभिषेक कर रही हैं। अनन्तर क्रम-क्रम से अपने भाईयों के चरण स्पर्श करते हुए कुमार बुद्धिसेन सबसे गले मिलते हैं तथा क्रम-क्रम से भावजों को भी प्रणाम करते हैं। मनोवती भी ससुर हेमदत्त के चरणों का स्पर्श करके सासू को नमस्कार करके क्रम-क्रम से सभी जेठ और जेठानियों के चरण-स्पर्श करती है। सभी मनोवती को गले लगाकर खूब रोती हैं।

ऐसा लगता है कि जो इन लोगों ने 'जिनदर्शन प्रतिज्ञा' की निंदा करके पापपुंज संचित किया था, वही सब पापसमूह अब बुद्धिसेन और मनोवती के स्पर्श से अश्रुओं के बहाने निकलकर भागा जा रहा है चूँकि

अब उसको यहाँ किसी के पास ठहरने की हिम्मत नहीं रही है।

अनन्तर सब लोग अपने-अपने अश्रुओं को रोककर एकटक—अपलक कुमार के मुख को ताकते हैं, उसको पहिचानने की कोशिश करते हैं, तब कहीं बड़ी मुश्किल से कुछ तिल, व्यंजन आदि चिन्हों से उसको पहिचान पाते हैं कि सचमुच में यह वही तो हमारा प्यारा पुत्र है और बंधुवर्ग भी समझ लेते हैं कि यह वही पुण्यशाली लक्ष्मी का स्वामी मेरा प्यारा छोटा भाई है कि जिसको हम सभी ने तो गोद में खिलाया था।

बुद्धिसेन सबको साथ लेकर चौक में बिछे हुए मखमल के गद्दे पर बैठ जाते हैं और पिता से उनके दुःखों की कहानी पूछते हैं—

"पूज्य पिता! आपको अपना देश बल्लभपुर छोड़े कितने दिन हुए हैं? आप यहाँ इस दशा में कैसे?"

"बेटा! मेरा किसी जन्म का कुछ पुण्य तेरे पास ले आया, नहीं तो हम लोगों ने तुझे निकालकर जो पाप कमाया था, शायद उसका फल जीवन भर भी भोगने से नहीं छूटता किन्तु.....न जाने किस जन्म के पुण्य ने मेरा साथ दिया है।".....

हेमश्री मनोवती को बार-बार अपनी छाती से चिपका-चिपका कर कहती है—

"बेटी मनोवती! तेरे वियोग से हमने न जाने क्या-क्या संकट झेले हैं?"

बुद्धिसेन बहुत ही आश्चर्य से पूछते हैं—

"पिताजी! इतने करोड़ों की सम्पत्ति का अकस्मात् क्या हुआ? क्या राजा ने लुटवा लिया या चोर डाकू लूट ले गये या अग्नि लग गयी? आखिर आप लोग ऐसे सम्पत्तिहीन-दीन कैसे हो गये?".....

"क्या पता, बेटा! तुम्हें निकाल देने के बाद अकस्मात् सारी सम्पत्ति कहाँ चली गई कुछ पता नहीं चला?.....क्या कहूँ बेटा!"

फिर अश्रु आ जाते हैं—

"पिताजी! अब आप अश्रु बिल्कुल न लाइये। क्या पता किस समय किसके कैसे दिन आ जाते हैं? कर्मों की गति बड़ी विचित्र है। अब आप पूर्ण शान्त होइये।"

"प्यारे बेटा! छह महीने भी नहीं हुए थे कि जब घर में खाने को दाना नहीं रहा। सारा कोठार जो कि रत्नों से, हीरों से, गजमोतियों से भरा हुआ था, वह सब खाली का खाली भाँय-भाँय कर रहा था। तब हमने तुम्हारी माता हेमश्री के गहने गिरवी रखे, फिर सभी बहुओं के गहने भी गिरवी रख दिये। जब फिर भी पेट के लाले पड़ गये, तब दुकानों को गिरवी रखना शुरू किया। जब सब दुकानें हाथ से निकल गईं तब हवेलियों को भी बेचना शुरू किया। बल्लभपुर के एक भाग की सारी ही हवेलियाँ तो हमारी थीं.....किन्तु हाय! जब सब हवेलियाँ बिक गईं मात्र जिसमें रहते थे वो ही बची तो उसे भी गिरवी रख दिया। ओह! बेटा इतने से भी दुर्दैव को शान्ति नहीं मिली तो जंगल में गये और घास-फूस की झोंपड़ी बनाकर रहने लगे....."

दिन भर लकड़ी काटते, इधर-उधर से बीनते और गठ्ठर बनाकर सिर पर रखकर शहर में बेचने जाते—

इतना सुनते ही बुद्धिसेन रो पड़े—

"हाय पिताजी! यह क्या करना पड़ा.....अरे दुष्ट दैव! तूने यह क्या किया.....?"

"अरे बेटा! दैव ने इतने पर भी संतोष नहीं किया। हम लोग पेट

नहीं भर पाये, तब बल्लभपुर छोड़कर बाहर निकले। अब हम लोगों से लकड़ी बीनना और बेचना भी नहीं हो पाया। इधर-उधर भटकते रहे कि कोई कुछ नौकरी पर लगा ले तो कहीं पड़े रहें किन्तु किसी ने भी नौकरी नहीं देना चाहा.....हाय! बेटा! क्या कहूँ? कोई हँसते, कोई अपरिचित समझ कर बोलते कि "अरे! ये कोई चोर लुटेरे फिर रहे हैं इन्हें अपने गाँव में नहीं रुकने देना।....."

"फिर आप यहाँ कैसे आये?"

"फिर बेटा! हम लोग दर-दर भीख माँगने लगे।"

मनोवती इतना सुनते ही बिलखने लगी—

"हाय! पिताजी! आप लोग.....इतने उत्तम कुलीन जौहरी और भी माँगना पड़ा।"

"हाँ बेटी! इन्हीं हाथों को पसारकर एक-एक पैसा, दो-दो पैसा झेला है और उनसे भोजन लेकर पेट भरना चाहा। कहीं पर भिक्षा में जो भी रूखी-सूखी रोटियाँ मिलीं, उन्हें सबने मिलकर खाया लेकिन पेट नहीं भर पाये फिर बेटा! घूमते-घूमते भटकते-भटकते हम लोग यहाँ रतनपुर के बगीचे में आये। वहाँ से शहर में आकर जब भीख माँग रहे थे तो 'सुखपाल जौहरी' जिनके यहाँ अपनी दुकान से बहुत बार हीरे, मोती, पन्ने भेजे जा चुके हैं, जो कि अपने ग्राहकों में विशेष एक ग्राहक थे। उन्होंने हम लोगों को देखा और कहा कि भाई! तुम लोग उत्तम कुल के दिखते हो, मालूम पड़ता है कि किसी आकस्मिक आपत्ति से परेशान हुए हो। भाई! तुम लोग भीख क्यों मांगते हो? किसी के यहाँ नौकरी या मजदूरी करके उदर भरो तो अच्छा रहेगा। मैंने कहा कि हम अपरिचित लोगों को कोई भी नौकरी देने को तैयार नहीं होते हैं। उसने समझाया

और कहा कि यहाँ राजा के जमाई हैं जो कि बहुत से गाँवों के मालिक भी हैं। वे यहीं रतनपुर में बहुत विशाल जिनमंदिर का निर्माण करा रहे हैं, तुम वहाँ चले जाओ। तुम्हें वहाँ मजदूरी अवश्य मिलेगी। मैंने कहा कि हम लोगों को यदि आप वहाँ मजदूरी दिला देंगे तो आपका बड़ा अहसान होगा। वे बेचारे हमारे साथ हो लिए और हमें ले जाकर आपके पास पहुँचाकर आपसे निवेदन किया किंतु बेटा! अभी एक वर्ष भी तुझे छोड़कर नहीं हुआ है और हम में से किसी ने भी तुझे नहीं पहचाना.....। और तू भी तो हम लोगों को इस दुरवस्था में नहीं पहचान पाया.....।"

बुद्धिसेन इतना सुनते ही एक बार मनोवती की ओर देखते हैं, पुनः लज्जा से माथा झुका लेते हैं और उनकी आँखों से अश्रु बहने लगते हैं। फिर रूँधे हुए कंठ से बोलते हैं—

"पूज्य पिता! क्षमा कीजिए मैंने बहुत बड़ा अपराध किया है, मैं अधम हूँ, पापी हूँ.....।"

"ऐ बेटा! तुम यह क्या कह रहे हो? तुमने भला क्या अपराध किया? अपराधी तो हम लोग हैं कि जिन्होंने तुझ जैसे रत्न को बिना अपराध के घर से निकाल दिया।"

"नहीं पिताजी! हमने बहुत बड़ा अपराध किया है।"

"पिताजी! मैंने तत्क्षण ही आपको, माँ को, सब भाईयों को और भावजों को पहिचान लिया था और इसलिए मैं वहाँ से उठकर महल में आया। आपकी पुत्र-वधू मनोवती से यह बात कह सुनाई कि सभी लोग हमारे यहाँ मजदूरी करने आये हैं। इन्होंने बहुत कुछ समझाया कि अब आप परिचय कराके उन्हें सुखी करो, परन्तु मुझे बहुत ही गुस्सा चढ़ा हुआ था, मैंने इनकी नहीं मानी और कहा कि मैं इनसे अपना बदला

अवश्य चुकाऊँगा। इन लोगों ने गर्व में आकर मुझे निकाल दिया है। अब मैं एक बार मजदूरी कराकर अनन्तर भेद खोलूँगा। तब भी मनोवती जी ने यह आग्रह किया कि आप माता-पिता से बोझा नहीं उठवाना, मैंने इतनी बात इनकी मान ली।

अनन्तर आज मध्यान्ह में मनोवती जी ने अतीव हठ पकड़ लिया कि आज परिचय कराना ही है अन्यथा मैं सबको बुलाकर परिचय स्थापित किये देती हूँ। तब मैंने अभी आप लोगों को बुलाया है अन्यथा कुछ दिन और भी मजदूरी करवाता।"

"किन्तु बेटा! इसमें तेरा क्या अपराध है? यह तो हम लोगों ने ही अपने किये का फल पाया है।"

बुद्धिसेन पश्चात्ताप से पीड़ित होकर बार-बार अपनी निन्दा करता है और भाई-भावजों से भी क्षमायाचना करता है—

"हे भाई! आप लोग मेरे पूज्य पितातुल्य हैं फिर भी क्रोध में आकर मैंने आप लोगों से मजदूरी कराई है सो अब आप सब मुझे क्षमा कर दें। बड़े लोगों का स्वभाव क्षमा का ही होता है और छोटे लोग बालकवत् अपराध किया करते हैं। भाभी जी! आप लोग मेरी माता के तुल्य हैं फिर भी मैंने आपके सिर पर बोझ रखवाया है सो क्षमा करें।"

सब आश्चर्य से सोच रहे हैं कि ओहो! हम लोगों ने इनके साथ तो सही में बिना कारण अन्याय किया है। अपराधी तो हम लोग हैं और उल्टे इनकी विवेकशीलता, उदारता तो देखो! जो कि ये उल्टे हम लोगों से क्षमायाचना कर रहे हैं। सभी लोग स्तब्ध रह जाते हैं पुनः धनदत्त कहता है—

"भाई! सच में देखा जाये तो अपराधी हम लोग ही हैं, आप नहीं हैं।"

बीच में हेमदत्त सही स्थिति को स्पष्ट करते हुए बोलते हैं—

"बेटा! यह तो तुझे मालूम ही है कि मनोवती ने घर में आकर अपनी प्रतिज्ञा पालने हेतु तीन उपवास कर लिये थे। अनन्तर तुम्हारे साले मनोजकुमार ने आकर भेद खोला, तब मैंने अपना कोठार खोल दिया, जिसमें इतने गजमोती थे कि जीवन भर मनोवती उनके पुंज जिनदेव के समक्ष चढ़ाती रहती तो भी वे समाप्त नहीं होते।"

दीर्घ निःश्वास लेकर—

"किन्तु होनहार बलवान् होती है। मनोवती ने एक बार ही गजमोती मंदिर में चढ़ाया था और अपने पीहर चली गई। इधर राजा मरुदत्त ने सभी जौहरियों को एक साथ सभा में बुलवाया और गजमोती की मांग की। हम लोगों में पहले यह निर्णय हो चुका था कि सभी जौहरी राजदरबार में एक ही उत्तर देवेंगे अतः उस समय सभी जौहरियों ने गजमोतियों के बारे में ना कर दिया और सबके साथ मैंने भी ना कर दिया।

हाय बेटा! मेरे ना कर देने से बड़ा अनर्थ हो गया। राजा ने आवेश में आकर कहा कि यदि आज या कल क्या, वर्षों बाद भी किसी के यहाँ गजमोती दिख गई तो उसे प्राणदंड दिया जायेगा और उनकी सारी सम्पत्ति जब्त कर ली जायेगी।.....घर आकर मैं बहुत ही चिंतित हुआ। अपने इन धनदत्त आदि छहों बेटों को बुलाकर विचार-विमर्श किया। अन्त में निर्णय यह रहा कि बुद्धिसेन को ही घर से निकाल दिया जाये तभी अपने धन की और प्राणों की रक्षा है। अन्यथा मनोवती आयेगी, गजमोती चढ़ायेगी पुनः राजा के कोप का भाजन हम लोगों को बनना ही पड़ेगा।

ओह! बस निर्बुद्धिक होकर हम लोगों ने तुझे घर से निकल जाने का आदेश दे दिया। बेटा! तेरी माँ को तो तेरे निकल जाने के बाद ही

पता चला है। बाद में यह तो बहुत दुःखी हुई है। खैर! जैसा हम लोगों ने किया....और तो क्या मनोवती की प्रतिज्ञा की भी हम लोगों ने निंदा की, उसकी भी निंदा की, कि यह कैसी तो प्रतिज्ञा और कैसी तो बहू? इत्यादि शब्दों में अवहेलना की, मन में कैसे दुर्भाव किये। बस, उसी का फल तो इतने दिनों से भोग रहे हैं.....अतः हम सभी लोग अपराधी हैं। बेटा! तुम उदार हृदय होकर अब हम सबको क्षमा कर दो।"

सभी भाई-भावज भी एक स्वर से क्षमा माँगते हैं—

"भाई! हम लोगों का अपराध क्षमा कर दो।"

कुमार बुद्धिसेन नीचा माथा कर लेते हैं और सकुचाते हुए कहते हैं-"पूज्य तात्! आपका क्या दोष है? हमने तो पूर्व में कुछ अशुभ कर्म संचित किये होंगे, उन्हीं का फल ऐसा मिला है। इसमें आप लोग तो बस निमित्तमात्र हैं। अब आप अपने इस संताप को छोड़ दीजिए और शांतचित्त होइये।"

कुछ क्षण बाद बिल्कुल शांत वातावरण होने पर पुनः हेमदत्त कहते हैं—

"बेटा बुद्धिसेन! घर से निकलने के बाद तुम्हें कैसे-कैसे प्रसंग आये? कहो तो सही!"

तब कुमार बुद्धिसेन ने भी न अति संक्षेप और न अति विस्तार से सुनाना शुरू किया—

"पिताजी! मैं हस्तिनापुर पहुँचकर केवल देश निर्वासन का समाचार सुनाकर विदेश गमन हेतु स्वीकृति चाहता था किन्तु मनोवती ने बहुत हठ पकड़कर मेरा साथ किया। यहीं रतनपुर के बगीचे में हम तीन दिन बाद आ पहुँचे। इन्होंने एक नग दिया, जिसे गिरवी रखकर मैं बराबर

तीन दिन तक भोजन का सामान लाता रहा। ये भोजन बनाती रहीं और मुझे जिमाती रहीं तथा आप स्वयं उपवास करती गईं। मैंने इन्हें अतीव कमजोर देखकर यही अनुमान लगाया कि मेरे निर्वासन के दुःख से और मुझसे अभी कोई व्यापार नहीं जम रहा है इसी चिंता से ये कमजोर होती जा रही हैं किन्तु आठवें दिन मैं तो रतनपुर शहर में व्यापार हेतु ही घूम रहा था, वहाँ बगीचे में इनकी प्रतिज्ञा की दृढ़ता से, इनके पुण्य प्रभाव से देवों ने आकर धरती में ही दिव्यविशाल मंदिर का निर्माण कर दिया और वहाँ रत्नों की जिनप्रतिमाएँ विराजमान कर दीं। इनके पैर के नीचे की शिला सरकी और इन्होंने उसे उठाकर नीचे जाकर स्नान आदि करके श्री जिनेन्द्रदेव का दर्शन पूजन किया। वहीं पर रखे हुए गजमोतियों के पुंज को लेकर प्रभु के चरण निकट चढ़ाकर अपना जीवन कृतार्थ किया।

"पिताजी! इन्होंने तो ऐसे दिव्य मंदिर का दर्शन मुझे भी नहीं कराया। स्वयं ही दर्शन करके कृतकृत्य हो गईं।"

पिता जी हँस पड़ते हैं और हर्ष में विभोर होकर सभी लोग एक साथ बोल पड़ते हैं—

धन्य हो मनोवती! तुम धन्य हो! ओहो!....तुमने अपनी प्रतिज्ञा से देवों के आसन कंपा दिये.....। तुम महा पुण्यशालिनी हो। सचमुच में तुम्हारे पुण्य की महिमा अपार है! हाँ, यही कारण है कि तुम्हारी प्रतिज्ञा की निंदा से हम लोग क्या से क्या हो गये! अरे! किन-किन परिस्थितियों का सामना नहीं किया?"

जय हो जय हो! जैनधर्म की जय हो! श्री जिनेन्द्रदेव की जय हो। प्रभो! आपके प्रसाद से ही सब सुख और सुमंगल होते हैं!.....

"अनन्तर क्या हुआ बेटा?"

"अनन्तर इन्होंने आठवें दिन भोजन किया और फिर भी मुझे कुछ नहीं बताया। इसके बाद इन्हें मन्दिर जी से आते समय दो मोती मिले थे सो एक मोती मुझे देकर कहा कि इसे राजा को भेंट करो। मैंने वैसा ही किया, तब राजा ने मेरा परिचय पूछकर और जौहरी पुत्र जानकर एक हवेली में ठहरा दिया।"

"अच्छा! तो तत्काल ही तुम सुखी हो गये!"

"हाँ पिता जी!"

बुद्धिसेन 'नर-मादा' मोती का पूरा किस्सा सुना देते हैं, जिसको सुनकर सभी लोग आश्चर्यचकित हो जाते हैं। इसके बाद राजा के द्वारा गुणवती के विवाह से लेकर जिनमंदिर निर्माण के कार्य की प्रेरणास्रोत ये मनोवती ही है, यहाँ तक का इतिहास सुना देते हैं। सभी प्रसन्नचित्त होकर मनोवती की और उसके गजमोती चढ़ाने की प्रतिज्ञा की भूरि-भूरि प्रशंसा करते हैं। सभी लोग प्रत्यक्ष में तत्क्षण ही प्रतिज्ञा के महान उत्तम फल को और उसकी अवहेलना से हुए अतीव हीन निकृष्ट फल को देखकर बराबर धर्म की प्रशंसा करते हुए अपने दुष्कृत्यों की निंदा करते हैं।

कुमार बुद्धिसेन पिता के पैर दबाते हुए बार-बार उनके शरीर में, गले में प्रकट रूप से दिखती हुई हड्डियों को, नसों को देख-देखकर विह्वल हो उठते हैं।

"ओह पिताजी! आप कितने कमजोर हो गये हैं। सारा बदन का रंग काला पड़ गया है।

हेमदत्त हँस पड़ते हैं—

"बेटा! अब सब वापस ठीक हो जायेगा।"

अर्धरात्रि का समय हो रहा है। मनोवती जेठानी के बच्चों को प्यार करके वहीं सुला रही है। तब बुद्धिसेन कुछ सोचकर सहसा बोल उठते हैं—

"प्रिये! भंडारी से कहकर भंडार खुलवाओ और वस्त्रों से, अलंकारों से सबको सुसज्जित करो।"

मनोवती तथैव व्यवस्था में लग जाती है। बुद्धिसेन कहते हैं—

"पिताजी! अब आप लोग वस्त्र परिवर्तित करके रथों में बैठकर इस शहर से पाँच-सात मील दूर बल्लभपुर के मार्ग में चले जाइये और वहीं पर ठहरिये। जब राजा को पता चलेगा कि अपने समधी सकुटुम्ब आ रहे हैं, तब वे आपके स्वागत के लिए आयेंगे और आपका महोत्सव के साथ इस शहर में प्रवेश कराया जावेगा।"

पिता ने कुछ सोचकर बेटे की बात मान ली और बुद्धिसेन ने स्वयं अपने हाथों से पिताजी के वस्त्र बदले, भाइयों को वस्त्र बदलाये। उन्हें सुन्दर-सुन्दर रत्नों के, हीरों के अलंकार पहिनाये और सभी के गले में गजमोतियों के सुन्दर-सुन्दर हार पहिनाये। मनोवती ने सासूजी को बढ़िया साड़ी पहनाई और जेवर पहिनाये, सभी जेठानी की साड़ियाँ बदलाई और सभी को बढ़िया-बढ़िया जेवर पहिनाये।

कुछ विश्वस्त लोगों के साथ जल्दी से जल्दी उन्हें रथ में, पालकियों में बिठाकर बाहर भेज दिया और उनके साथ में तमाम द्रव्य, हाथी, घोड़े, वाहन, परिकर, कर्मचारी आदि भी भेज दिये। वे लोग वहाँ से जाकर सात मील पहले एक बगीचे में ठहर गये।

मध्याह्न में राजा के पास कुमार ने सूचना भेज दी कि मेरे पिताजी सपरिवार पधारे हुए हैं। यहाँ से सात मील दूरी पर हैं। कल सुबह रत्नपुर

के बगीचे में आ जावेंगे। राजा को समाचार मिलते ही उनके हर्ष का पार नहीं रहा, यशोधर महाराज ने सारे शहर में घोषणा कर दी कि हमारे समधी जी पधारे हुए हैं। सारे शहर के नर-नारियों को हमारे साथ कल प्रातः उनके स्वागत हेतु चलना है। सारा शहर झंडियों से, तोरणद्वारों से, चन्दन के छिड़काव से, फूलों की मालाओं से और आम्र, अशोक तथा कदली के पत्तों से बहुत ही सुन्दर सजाया गया है।

महाराज यशोधर प्रातःकाल अपने परिवार के साथ तथा बुद्धिसेन जमाई, उनकी भार्या मनोवती और गुणवती के साथ, अमात्य मंत्री, सेनापति, राजश्रेष्ठी, जौहरी आदि नागरिक जनों के साथ-साथ बड़े ही लवाजमे सहित निकलते हैं। कितने ही तरह के मंगल बाजे बज रहे हैं। सौभाग्यवती महिलाएं मंगलगीत गा रही हैं। सभी लोग चलकर शहर के बाहर बगीचे में पहुँचते हैं।

राजा यशोधर और बुद्धिसेन कुमार अपनी-अपनी रानियों के साथ अपने-अपने रथ से उतर पड़ते हैं। बगीचे में आगे बढ़कर समधी से मिलते हैं। उस समय बाजों की गंभीर ध्वनि से आकाश मंडल गुंजायमान हो उठता है। सब एक-दूसरे के गले लगकर शरीर की कुशल क्षेम पूछकर माता हेमश्री से मिलकर यथोचित अभिवादन कर उनसे शहर में पधारने की प्रार्थना करते हैं। वे लोग भी प्रसन्नपूर्ण मुखमुद्रा से सभी का यथोचित सत्कार करके सबके साथ वहाँ से प्रस्थान कर देते हैं। शहर में महलों की अटारियों पर उनके प्रवेश को देखने हेतु लाखों नर-नारी खड़े हुए हैं। सड़कें खचाखच भरी हुई हैं। कर्मचारीगण बड़ी मुश्किल से भीड़ को हटा पाते हैं जब वहाँ से इन लोगों के रथ आगे बढ़ पाते हैं। जनता आपस में उनका परिचय दे रही है। देखो ना, ये रथ पर बुद्धिसेन के

साथ बैठे हुए महानुभाव उनके पिताजी मालूम पड़ रहे हैं। ये अन्य रथों पर अपनी-अपनी भार्यायों के साथ उनके भाई हैं। ये देखो! सामने रथ पर मनोवती और गुणवती के बीच में जो बैठी हुई हैं, वे ही तो बुद्धिसेन महाराज की माता हैं।

.....कुछ घण्टों के बाद सब लोग राजमहल तक आ जाते हैं। महाराज आज दिन सबको राजमहल में ही ठहराते हैं। सब लोगों को भोजन पान कराते हैं। सारे गाँव के लोगों को जिमाते हैं।

.....दूसरे दिन सभी परिवार को कुमार बुद्धिसेन अपने महल में ले जाते हैं और उनका यथोचित आदर सत्कार करके भोजन कराते हैं और सभी भाइयों के लिए अलग-अलग बड़ी-बड़ी हवेलियाँ खुलवा देते हैं।

.....सभी परिवार के लोग सब तरफ से सुखी हैं। शाम को कुमार अपने महल में जब बैठते हैं तब सभी परिवार के लोग एकत्रित हो जाते हैं। मनोरंजन के साथ-साथ मंदिर निर्माण की गतिविधियों पर विचार-विमर्श चलता रहता है। कुमार स्वयं अपने हाथों से प्रतिदिन पिताश्री के चरण दबाते हैं और मनोवती सासूजी की सेवा करती रहती हैं।

सेठ हेमदत्त कभी-कभी पिछले दिनों की याद कर सिहर उठते हैं। हेमश्री भी सोचती हैं कि देखो! कर्मों की लीला कितनी विचित्र है! एक दिन यह बहूरानी महारानी और मैं उसकी नौकरानी थी। इसके बुलाने पर भी इसके पास जाने को सकुचाती थी और आज यह उदारमना देवी मेरी सेवा टहल कर रही है।

सभी लोग प्रत्यक्ष में पाप के फल से दुःख उठा चुके हैं अतः अब धर्म की निन्दा से, धर्मात्मा की निंदा से परिपूर्णतया निवृत्त हो चुके

हैं। अब तो खूब ही रुचि से जिनेन्द्रदेव की पूजा में तत्पर हो रहे हैं। हमेशा धर्मचर्चा के सिवाय अब अन्य कुछ बातें किसी को भी नहीं सुहाती हैं। मनोवती को सब लोग साक्षात् धर्म की मूर्ति समझ रहे हैं। धर्मध्यानपूर्वक सभी का समय सुख शांति से व्यतीत हो रहा है।

(११)

कुछ दिन बाद कुमार बुद्धिसेन मंदिर का विस्तृत वर्णन करते हुए पुनः मनोवती से पूछते हैं—

"आपने जो देवों द्वारा रचित दिव्य जिनमंदिर का दर्शन किया है, उसमें की कोई और भी सुन्दर आकृति (डिजाइन) बताओ जो कि वहाँ पर किंचित् रूप में बनवाई जा सके।"

"मैंने जो कुछ भी बढ़िया आकार देखा था, वह सब बता दिया है और प्रायः वह किसी न किसी अंश में बन चुका है। यद्यपि उसमें विशेषताएं तो बहुत सी थीं किन्तु अब मुझे स्मरण में पूरी तौर से नहीं आ रही हैं।"

"तो अब अपना निर्माण कार्य पूरा हो लिया है। अब तो वह जिनमंदिर देखते ही बनता है और जब इसमें जिनेन्द्रदेव की प्रतिमाएँ विराजमान हो जावेंगी फिर क्या पूछना!"

"स्वामिन्! अब बहुत शीघ्र ही प्रतिष्ठा विधि करवाकर जिनेन्द्रदेव की रत्नमयी प्रतिमाएं विराजमान करवाइये। अब किंचित् भी देर न कीजिए।"

"तो ठीक है प्रिये! मैं अभी महाराज के पास पहुँचकर प्रतिष्ठा का निर्णय लिये लेता हूँ।"

कुमार बुद्धिसेन सभा में पहुँचकर महाराज यशोधर को प्रणाम कर यथोचित आसन पर बैठ जाते हैं। परस्पर में कुशल क्षेम होने के बाद मंदिर निर्माण की चर्चा चलती है। आगे उसी विषय में बुद्धिसेन कहते हैं—

"महाराजाधिराज! मंदिर का कार्य सुचारुतया सम्पन्न हो चुका है। आप एक बार चलकर अवश्य ही निरीक्षण कीजिए।"

"बहुत अच्छा! अवश्य चलूँगा।"

"महाराज! अब पञ्चकल्याणक प्रतिष्ठा कराने की भी आज्ञा दीजिए।"

महाराज प्रसन्नता व्यक्त करते हुए—

"बहुत अच्छी बात है, कुँवर साहब! बहुत ही विशेषरूप में प्रतिष्ठा होनी चाहिए। अच्छा! मंत्री महोदय! ज्योतिषीजी महाराज को बुलवाइये।"

"जो आज्ञा महाराज!"

"हाँ, कुँवर जी! देखिये, जो भी सहायता आप हमसे चाहें, हम सब कुछ करने को तैयार हैं.....।"

इसी चर्चा के बीच में ज्योतिषीजी आ जाते हैं और यथोचित अभिवादन कर बैठ जाते हैं।

"हाँ, पंडितजी! श्री जिनेन्द्रदेव की पंचकल्याणक प्रतिष्ठा का बहुत ही उत्तम मुहूर्त निकालिये।"

पंडित जी मुहूर्त देखकर राजा को बतला देते हैं। राजा भण्डारी से पंडित के लिए यथोचित भेंट मँगवाकर उन्हें दे देते हैं। राजा पुनः कहते हैं—

"आप अब कुंकुम पत्रिका लिखवाइये और सभी देशों में, शहरों-, नगरों में तथा सभी ग्रामों में भिजवाइये।

कुमार बुद्धिसेन वहाँ से आकर अपनी प्राणवल्लभा मनोवती को सारा समाचार सुना देते हैं पुनः सायंकाल में पिताजी के समक्ष अपने सभी परिवार को बिठाकर सारी खुशखबरी बता देते हैं। सभी लोग आनन्द विभोर हो जाते हैं।

दूसरे दिन प्रातःकाल से पंचकल्याणक प्रतिष्ठा की तैयारियाँ शुरू हो जाती हैं। सर्वत्र उत्तर-दक्षिण और पूर्व-पश्चिम के सभी छोटे-बड़े ग्रामों और शहरों में कुंकुम पत्रिकाएं भेजी जाती हैं। चतुर्विध संघों को प्रार्थना करके उनका पदार्पण कराते हैं तथा बड़े-बड़े प्रतिष्ठाचार्य पंडित लोगों को आमंत्रित करते हैं। बड़े-बड़े महल, मकान खाली कर-करके खुले कर दिये गये हैं और शहर के बाहर बगीचों में तमाम तंबू डेरे लगाये गये हैं। जगह-जगह बड़े-बड़े पांडाल बनाये गये हैं। सारा शहर ध्वजा-पताकाओं से, तोरणों से, वंदनवारों से और बड़े-बड़े तोरणद्वारों से सजाया गया है।

राजा यशोधर ने सर्वत्र शहर में घोषणा कर दी है कि कोई भी यात्री किसी से कुछ माँगे तो अविलम्ब दिया जाये और उसकी कीमत कागज में लिखकर हमारे खजांची के पास भेज दी जाये। सभी का कुल खर्चा हमारी कोठी से होवेगा। यदि कदाचित् किसी यात्री से कोई अपराध बन जावे तो वह माफ कर दिया जावे। राजा ने कुमार बुद्धिसेन के पास भी व्यवस्था के लिए अपनी बहुत कुछ सेना भेज दी।

बुद्धिसेन कुमार ने भी अपने बड़े-बड़े कोठार और भंडार खोल दिये हैं और खजांची को आज्ञा दे दी है कि खुले हाथों और खुले मन से खर्चा करो। किसी को किंचित् भी तकलीफ नहीं होने पावे। लाखों यात्री देश-देश से आ रहे हैं, कोई अपने-अपने रिश्तेदारों के यहाँ, कोई शहर

की हवेलियों में, मकानों में और कोई-कोई यात्री बगीचों में बने हुए तंबू डेरों में ठहर रहे हैं बहुत से व्यवस्थापक चारों तरफ नियुक्त किये गये हैं। शहर की गली-गली में डगर-डगर में धूम-धाम मच रही है।

बुद्धिसेन की छोटी पत्नी गुणवती गर्व में फूल रही है। मेरे प्रति मेरे पतिदेव का अधिक प्रेम है। अतः मैं ही प्रमुख इन्द्राणी बनूँगी। शहर के प्रतिष्ठित व्यक्तियों को जब इस बात का पता चलता है तो वे लोग एकांत में बैठकर विचार-विमर्श करके महाराज यशोधर के दरबार में पहुँचते हैं। महाराज उन पंचजनों का यथोचित सत्कार करके प्रश्न करते हैं —

"कहिए श्रीमन्महोदय! आप लोगों का आगमन इस समय कैसे हुआ? मेरे लिए कोई खास आज्ञा हो तो फरमाएँ।"

"महाराजाधिराज! आप जैसे धर्मात्मा और धर्म का सही मूल्यांकन करने वाले ऐसे राजा को पाकर हम धन्य हैं।.....महाराज! आज आने का खास कारण यह है कि इस पंचकल्याणक प्रतिष्ठा के सौधर्म इन्द्र कौन बनेंगे?"

"सौधर्म इन्द्र के अधिकारी तो बुद्धिसेन कुमार हैं ही, इसके लिए हमारा निर्णय क्या लेना?"

"फिर महाराज! उनकी शची इंद्राणी का स्थान किन्हें मिलना चाहिए?"

"विद्वज्जनों! उनकी जो मनोवती धर्मपत्नी हैं वे ही शची इन्द्राणी बनेंगी।"

"महाराज! गुणवती जी राजपुत्री हैं उनको....."

"नहीं, नहीं! इस विषय में राजपुत्री से क्या संबंध? पहली बात तो मनोवती बड़ी रानी है, फिर दूसरी बात यह है कि यह सारा अचिन्त्य

माहात्म्य तो उन्हीं का ही है अतः न्याय से उन्हीं को प्रमुख इन्द्राणी का अधिकार देना होगा।"

"जय हो, महाराज यशोधर का यश विश्वव्यापी बने।"

सब लोग बड़े आदर से महाराज के गुणों की प्रशंसा करते हुए वहाँ से निकल कर सीधे बुद्धिसेन के दरबार में पहुँचते हैं और राजा का आदेश सुना देते हैं। बुद्धिसेन भी यथोचित न्याय को पाकर हर्षातिरेक से रोमांचित हो उठते हैं अपनी प्रिया मनोवती को सारा समाचार सुनाकर पुनः गुणवती जी के महल में पहुँच कर उसे भी प्रिय हित मधुर वचनों से समझा-बुझाकर इन्द्राणी बनने के लिए तैयार करते हैं —

"देखो प्रिये! यह मनोवती मेरे साथ न आती तो मैं आज न जाने कहाँ होता! मैं तुम्हें भला कैसे पा सकता था? इसलिए महाराज का न्याय यथोचित ही है। अब तुम किसी प्रकार का मन में विषाद मत करो और प्रसन्नमना होकर मनोवती की सहचारिणी बनो।"

प्रातःकाल से अनेकों तरह के मंगल बाजे बज रहे हैं। प्रतिष्ठा विधि का कार्यक्रम प्रारंभ हो चुका है। धनदत्त, सोमदत्त आदि छहों भाई भी ईशान, सनत्कुमार आदि इन्द्र बने हुए हैं। कुल सभी मिलकर सौ इन्द्र अपनी-अपनी इन्द्राणियों के साथ आकर विधान मंडप में उपस्थित हो चुके हैं। ऐसा लग रहा है कि मानों साक्षात् सौधर्म इन्द्र ही अपने चतुर्निकाय के सभी इन्द्रों और परिवार देवों के साथ उपस्थित हैं। पिता हेमदत्त और माता हेमश्री खुशी से फूल रहे हैं। उन्हें बुद्धिसेन के विवाह में जो आनन्द आया था, आज उससे करोड़ों गुणा अथवा यों कहिए असंख्य गुणा आनन्द आ रहा है।

सेठानी हेमश्री बार-बार मनोवती की प्रतिज्ञा की प्रशंसा कर रही

है। सेठ हेमदत्त भी प्रतिज्ञा के प्रत्यक्ष फल को देख-देखकर धर्म के प्रति अपना संवेग भाव वृद्धिंगत कर रहे हैं। विधिवत् पाँचों कल्याणकों द्वारा रत्नों के जिनबिम्ब की प्रतिष्ठा हो रही है। मूलनायक भगवान् ऋषभदेव का सर्वश्रेष्ठ धर्म वृद्धिंगत हो रहा है।

बुद्धिसेन कुमार के आदेश से उनके खजांची लोगों से द्रव्य लेकर, भोजन विभाग के व्यवस्थापक लोग बहुत ही सुन्दर भोजन की व्यवस्था बनाये हुए हैं। सभी यात्री लोग वहीं भोजनशाला में भोजन करते हैं। शहर के सभी स्त्री-पुरुष भी वहीं भोजनशाला में जीमते हैं। आगन्तुक दर्शकगण जो इतर—अजैन लोग हैं, उनके लिए पृथक् भोजनशालाएं खुली हुई हैं। गरीबों के लिए तथा अंधे, लंगड़े आदि के लिए अलग भोजनालय खुले हुए हैं। वहाँ पर दिन के बारह घंटे सदावर्त[१] चल रहा है।

प्रतिष्ठा मण्डप की शोभा का वर्णन अपार है। बावन गज के चौक (चबूतरे) पर रत्नों के चूर्ण और मोतियों से मंडल पूरा गया है। सर्वत्र रत्न, हीरे, मोती, माणिक, मरकत, पन्ना, स्फटिक, वैडूर्य आदि मणियों की शोभा ही दिखाई देती है। श्री ऋषभदेव की विशाल मूर्ति उत्तम पुखराज मणि से निर्मित अतीव सुन्दर समचतुरस्त्र संस्थान आदि उत्तम लक्षणों से विशेष है। भामंडल आदि आठ प्रातिहार्य और आठ प्रकार के मंगल द्रव्यों से वेदिका विशेष रूप से सुसज्जित हो रही है।

सभी इन्द्रगण नाना प्रकार के रेशमी आदि दिव्य शुभ्र धोती और दुपट्टे को धारण किये हुए हैं। नाना प्रकार के अलंकार और यज्ञोपवीत से विभूषित हैं और मस्तक पर सुन्दर मुकुट बांधे हुए हैं। इन्द्राणियाँ भी दिव्य वस्त्राभूषणों से सुसज्जित होकर मस्तक में मुकुट

१. सभी के लिए हर समय भोजन आदि दान देते रहना सदावर्त कहलाता है।

लगाए हुए अपने पति के हर एक कार्य में सहयोगिनी हो रही हैं। इस प्रकार से सात दिन तक प्रतिष्ठा विधि चलती है। अन्तिम आठवें दिन रथयात्रा का महामहोत्सव मनाया जाता है। श्री जिनबिंब को रथ में विराजमान करके सारे शहर में श्रीविहार कराया जाता है। उस समय हजारों हाथी, घोड़े, रथ, पालकी आदि उस उत्सव में आगे-आगे चल रहे हैं। महाराज यशोधर स्वयं नंगे पैर श्रीविहार के साथ-साथ चल रहे हैं। अनंतर इन्द्राणी मनोवती के साथ सौधर्मेन्द्र बुद्धिसेन की गाँठ जोड़कर सूत फेरने की विधि उत्सव के साथ सम्पन्न की जाती है। उस समय बाजों की ध्वनि से सारा शहर और आकाश मण्डल मुखरित हो उठता है। इस तरह आनंद मंगलपूर्वक बिना किसी विघ्न-बाधा के आठ दिन में विधि-विधान का कार्य संपूर्ण किया जाता है।

नवमें दिन सभी देश-विदेश के यात्रियों का यथोचित सम्मान करते हुए बुद्धिसेन महाराज सबको विदाई दे रहे हैं किन्तु बल्लभपुर और हस्तिनापुर के सभी यात्रियों को उन्होंने और एक दिन के लिए अतीव आग्रह करके रोक लिया है। उस दिन उन सबका विशेष आदर सम्मान करके दसवें दिन उन लोगों की भी विदाई कर दी।

सर्वत्र शहर में और अपने-अपने देश को वापस जाने वाले यात्रियों के समूह में बस एक ही चर्चा चल रही है।

"ओहो! देखो तो सही, मनोवती देवी यह हस्तिनापुर के जौहरी सेठ महारथ जी की सुपुत्री हैं। इनने मुनिराज के पास यह प्रतिज्ञा ली थी कि "मैं जिनेन्द्रदेव के बिम्ब के समक्ष गजमोतियों को चढ़ाकर ही भोजन करूँगी।" प्रारंभ में ससुराल में आते ही तीन उपवास कर डाले पुनः गजमोती चढ़ाकर चौथे दिन भोजन किया।.....अनंतर पति के

देशनिर्वासन के बाद उनके साथ नंगे पैर पैदल चलकर इस रतनपुर बगीचे में आई। देवों द्वारा निर्मित किये गये जिनमंदिर में गजमोती चढ़ाकर आठवें दिन भोजन किया था। इसी प्रतिज्ञा के प्रभाव से ही उसने अपने पतिदेव को और अपने को आज इतने ऊँचे उन्नति के शिखर पर चढ़ाया है।"

"देखो ना! कितना विशाल जिनमंदिर बना है। कितने रत्नों का प्रकाश उसमें जगमगा रहा है। एक सौ आठ बड़े-बड़े शिखर हैं और उन्हीं में छोटे-छोटे शिखर हैं। कुल मिलाकर एक हजार आठ शिखर बने हुए हैं और सभी पर सुवर्णों के, मणियों के कलश चढ़ाये गये हैं।"

"हाँ भाई! राजा यशोधर ने इन्हें अपनी पुत्री ब्याह दी है और इन्हें अपने विशाल राज्य का चौथाई भाग दे दिया है। इसलिए ये अब सेठ पुत्र नहीं रहे हैं ये राजजमाई हैं।"

"नहीं नहीं! ये तो अब स्वयं राजा ही हैं। बहुत से गाँवों के स्वामी हैं। इनके वैभव का क्या कहना? सच है! इन्होंने अपनी चंचला लक्ष्मी का सदुपयोग कर लिया है। जिनबिम्ब प्रतिष्ठा से और जिनमंदिर निर्माण से बढ़कर तीनों लोकों में कोई भी महान पुण्य कार्य न था, न है और न होगा। अरे भाई! यदि तीन लोकों के सारे पुण्य को इकट्ठा करके तराजू के एक पलड़े में रखो और एक जिनमंदिर बनवाकर प्रतिष्ठा कराके उसमें जिनबिंब विराजमान करने के पुण्य को एक पलड़े में रखो तो इस जिनमंदिर के पुण्य का पलड़ा ही भारी हो जावेगा।"

इस तरह नाना प्रकार से उभय दम्पत्ति की तथा मनोवती की प्रतिज्ञा की और प्रतिष्ठा संबंधी विशेषता की चर्चायें करते हुए तमाम लोग भी महान पुण्य का अर्जन करते चले जा रहे हैं।

(१२)

बल्लभपुर नरेश महाराज मरुदत्त अपने सिंहासन पर आरूढ़ हैं। मंत्रीगण उनके निकट में बैठे हुए हैं और जैसी की वापस आए हुए प्रजा जनों के मुख से रतनपुर में हुई प्रतिष्ठा की चर्चा सुनी है, वही सुना रहे हैं—

"महाराज! उस प्रतिष्ठा की अपनी विशेषता यह रही कि राजजमाई ने सभी लाखों यात्रियों को विदाई के समय एक-एक रत्नहार भेंट में दिए हैं और वस्त्र भी दिये हैं। करोड़ों याचकों को मुँह माँगा दान दिया गया है। आठ दिन तक तो इतने लोगों ने भोजन किया है-कहते हैं कि शायद उनकी संख्या चक्रवर्ती के कटक के लोगों की संख्या से कम नहीं होगी।

"हाँ महाराज! इस समय तो यह प्रतिष्ठा अपने आप में एक अद्‌भुत ही हुई है।"

द्वारपाल आकर नमस्कार करके निवेदन करता है-

"महाराजाधिराज की जय हो। महाराज! अपने नगर के जौहरी लोग पधारे हुए हैं।"

"हाँ, अन्दर आने दो।"

सभी लोग आकर यथोचित भेंट रखकर विनय करके बैठ जाते हैं-"कहिए! जौहरी जी कहिए! आप लोग रतनपुर से सकुशल तो आ रहे हैं? कहिए प्रतिष्ठा संबंधी कोई विशेष वार्ता कहिए!"

"महाराज! हम लोग विशेष वार्ता सुनाने ही आये हैं।"

लोग कुछ सकुचाते हैं—

"कहिए ना!"

"महाराज! लगभग एक वर्ष हुए होंगे, आपने एक दिन सभा में सभी जौहरियों को बुलाया था.....।"

"हाँ, हाँ! गजमोतियों की मांग की थी मैंने.....।"

"हाँ महाराज! उसी दिन जौहरी हेमदत्त ने भी गजमोती के बावत ना कर दिया था।"

"फिर क्या हुआ?"

"फिर महाराज! वे घर पहुँचे और चिंतित हो गये। चूँकि उनकी छोटी बहू जो कि हस्तिनापुर से आई थी, उसकी जिन मंदिर में गजमोती चढ़ाने की प्रतिज्ञा थी और सेठ जी के घर न जाने कितने गजमोती कोठार में भरे पड़े थे। बहू आयेगी, गजमोती चढ़ायेगी तो क्या होगा?.....इसी डर से सेठ जी ने अपने छोटे पुत्र को घर से निकाल दिया।"

आश्चर्य और खेद के साथ—

"अरे! यह क्या हुआ? फिर वह कहाँ है?"

"महाराज! वह हस्तिनापुर से अपनी भार्या मनोवती को लेकर रतनपुर चला गया। वहाँ पर बगीचे में मनोवती को गजमोती चढ़ाये बिना सात उपवास हो गये.....। अनन्तर देवों ने दर्शन कराकर उसकी प्रतिज्ञा निभाई और उसी समय 'नर-मादा' ऐसे दो मोती देवों ने ही उसे दिये। जिनके फलस्वरूप वह बुद्धिसेन राजा का जमाई हुआ।"

आश्चर्य से—

"अच्छा!"

"हाँ महाराज! यह प्रतिष्ठा उसी ने तो कराई है। सारे कार्य में प्रेरणा एकमात्र उस मनोवती महिलारत्न की ही है।"

"यह बात सत्य है या किंवदन्ती मात्र है?"

"नहीं महाराज! बिल्कुल सत्य है। मैंने स्वयं देखा कि प्रतिष्ठा के आठ दिन बाद सब यात्री तो चले गये परन्तु कुमार ने बल्लभपुर के

सभी यात्रियों को तथा हस्तिनापुर के यात्रियों को आग्रहपूर्वक रोक लिया और उनका विशेष सत्कार किया।"

अन्य जौहरीगण भी स्वतः देखी सुनी बातों को सुनाने लगते हैं—

"महाराज! मैंने स्वयं देखा, हस्तिनापुर के सेठ महाराज जी अपनी पुत्री मनोवती के माथे पर हाथ फेरते हुए कह रहे थे कि बेटी मनोवती! तू बिना कुछ कहे सारे जेवर आभूषण उतारकर वहीं पलंग पर डाल कर चली आई थी। तब हम लोगों के शोक का पारावार नहीं था और अब तेरी इस उन्नति को, तेरी प्रतिज्ञा के इस माहात्म्य को देखकर मेरी खुशी का भी पार नहीं है।"

"महाराज! स्वयं अपने नगर के सेठ हेमदत्त सपरिवार वहीं पर रहते हैं।"

"अरे! वे यहाँ से कब चले गये?"

"राजन्! अपने पुत्र को निकालने के बाद वे चन्द दिनों में अपने आप ही सम्पत्ति और श्री से विहीन हो गये।"

"अपराध क्षमा हो! मैंने तो सुना है कि उन्होंने दुकानों और मकानों को तथा औरतों के जेवरों को भी कुछ बेच खाया, कुछ गिरवी रखकर उससे पेट भरा।"

"अरे! मैंने तो यहाँ तक सुना है कि उन्होंने कुछ दिन यहीं पर जंगल से सपरिवार सिर पर लकड़ियों के गट्ठर लाकर बेचे हैं।"

"हाय, हाय! यह सब बातें मुझे क्यों नहीं बताई गईं?"

"और तो क्या महाराज! वे देश छोड़कर भीख माँगते-माँगते रतनपुर पहुँचे और वहाँ पर कुछ दिनों तक इसी मंदिर के निर्माण कार्य में मजदूरी भी की है।.....अनंतर जब कुमार बुद्धिसेन को मालूम हुआ, तब उसने इनका परिचय कराकर राजा के द्वारा इनका सम्मान कराया है।"

"ओह! मंत्री! मेरे निमित्त से मेरे शहर के इतने पुण्यशाली संपत्तिशाली जौहरी को ऐसे-ऐसे संकटों का सामना करना पड़ा। धिक्कार हो मुझे! जो कि मेरे कठोर अनुशासन के निमित्त से ऐसा नररत्न बुद्धिसेन रतनपुर में कीर्ति पताका फहरा रहा है। मंत्रिन्! अब उन सबको अपने शहर में वापस लाओ।"

"महाराज! वे बुद्धिसेन वहाँ पर यशोधर महाराज के बहुत कुछ राज्यभाग के अधिकारी हैं। अब वे वहाँ पर राज्य कर रहे हैं। वे यहाँ वापस कैसे आयेंगे?"

"नहीं मंत्रिन्! तुम स्वयं वहाँ जाओ और कुमार बुद्धिसेन से समझाकर कहो कि महाराजा मरुदत्त सब प्रकार से क्षमा याचना करा रहे हैं और वे अब तुम्हारे वियोग से बहुत दुःखी हैं.....। वे तुम्हारे वहाँ चले बिना अब अपने प्राणों को भी धारण करने में असमर्थ हैं।"

महाराजा मरुदत्त पश्चात्ताप से आहत हो बुद्धिसेन से मिलने के लिए विह्वल हो उठते हैं—

"मंत्रिन्! अब इस कार्य में एक क्षण की भी देरी करना उचित नहीं है।"

"जो आज्ञा महाराज! मैं स्वयं अभी-अभी प्रस्थान की तैयारी कर रहा हूँ। मैं लेकर ही आऊँगा, आप निश्चिंत होइये।"

मंत्री महोदय कुछ परिकर अपने साथ लेकर रतनपुर पहुँचते हैं। कुमार बुद्धिसेन बल्लभपुर के मंत्री महोदय का यथोचित सम्मान करते हैं।

"कुमार! अब आप अपनी जन्मभूमि बल्लभपुर शहर को पवित्र कीजिए। महाराज आपको विशेष याद कर रहे हैं।"

बुद्धिसेन किंचित् मुस्कराकर बोलते हैं—

"मंत्री महोदय! अब बल्लभपुर में हमारे पैर रखने की आवश्यकता ही क्या है?"

"राजन्! यद्यपि आप यहाँ पर राज्य का भार सँभाल रहे हैं फिर भी आपके महाराजा साहब आद्योपांत आपकी सारी घटना सुनकर बहुत ही खिन्न हो रहे हैं। वे इस समय आपके वियोग से बहुत ही दुःखी हैं। यदि आप नहीं चलेंगे तो वे निश्चित ही चारों प्रकार के भोजन का त्याग कर देंगे। इसी आदेश के साथ उन्होंने मुझे आपकी सेवा में भेजा है।"

बुद्धिसेन कुछ विचार में पड़ जाते हैं—

"कुमार! अब आप किंचित् भी देरी न कीजिए। महाराज अत्यन्त व्याकुल हो रहे हैं।"

"मंत्री महोदय! मेरा चलना तो असंभव सा ही लगता है चूंकि महाराज यशोधर भी मुझे नहीं छोड़ेंगे।.....अतः आप महाराजश्री से हाथ जोड़कर मेरा नम्र निवेदन कीजिए कि वे समय पाकर एक बार आपसे मिलने अवश्य आवेंगे किन्तु वहाँ रहने की बात तो.....।"

"बुद्धिसेन कुमार! आप महान् बुद्धिमान हैं। आपको इस विषय पर गहराई से सोचना होगा। महाराज साहब ये निर्णय कर चुके हैं कि वे मेरे अकेले वापस पहुँचते ही अन्न-जल का त्याग कर देंगे। इसमें आप बिल्कुल भी शंका न करें।"

बुद्धिसेन कुमार मंत्री को आश्वासन देकर सीधे अपने महल पहुँचते हैं और प्रिया मनोवती के सामने सारी स्थिति रख देते हैं। मनोवती कहती है—

"स्वामिन्! अब आपको बल्लभपुर चलना ही उचित है।"

"प्रिये! मैं तो किसी भी हालत में जाने को तैयार नहीं हूँ।" हाँ! यदि माता-पिता आदि परिवार के लोग जाते हैं तो मैं रोकूँगा नहीं।"

"प्रियतम! मैं एक बात और कहूँ।"

"कहिए।"

"यहाँ पर आपको रहना कथमपि श्रेयस्कर नहीं है। देखिये! यहाँ पर सभी लोग आपको राजजमाई के नाम से ही जानते हैं। आपके पिता का नाम यहाँ नहीं चल सकता है अतः आपको अपने ही देश में चलकर अपने पिता का नाम चलाना चाहिए। ससुराल के कुल में अपनी प्रसिद्धि पाने वाले....क्या उत्तम पुरुष माने जाते हैं?"

बुद्धिसेन कुमार सोचने लगते हैं कि बिल्कुल सच बात है। हस्तिनापुर में इसके द्वारा रोकने के आग्रह में मैंने यही हेतु उपस्थित किया था और ससुराल में रहकर अपने पिता के नाम को डुबोना उचित नहीं समझा था और अब.....यहाँ पर भी तो वही बात है अतः अब बल्लभपुर जाना ही उचित है।

"ठीक है, प्रियतमे! आपने उचित सलाह दी है। अब मैं पिताजी से मिलकर सारी स्थिति का दिग्दर्शन कराके राजा से आज्ञा लेने जाऊँगा।"

बुद्धिसेन पिता आदि को मंत्री के आने का समाचार सुनाकर उनसे मिलान करा देते हैं पुनः आप दरबार में पहुँचकर महाराज की विनय करके बैठ जाते हैं-

"महाराज! हमारे बल्लभपुर से मंत्री महोदय हमें लिवाने के लिए आये हैं, सो आप अब हमें अपने देश जाने की आज्ञा दीजिए।"

"कुमार! आपने आज ऐसी बात कही सो अब कभी नहीं कहना, क्या हम आपके बिना रह सकते हैं?"

"महाराज! मंत्री ने ऐसा कहा कि मेरे न पहुँचने से महाराजा मरुदत्त अन्न-जल का त्याग कर देंगे.....अब हम लाचार हैं आप ही.....जैसा आदेश करेंगे, वैसा होगा।"

"ओह! यह क्या?"

महाराज यशोधर कुछ देर सोचकर अंत में यह समझ लेते हैं कि अब इन्हें भेजना ही पड़ेगा? सच है.....ऐसे पुण्यात्मा नररत्न को भला कौन छोड़ सकता है? यह उसी बल्लभपुर का ही तो रत्न है। बाद में दीर्घ निःश्वास लेकर बोलते हैं —

"कुमार! जब राजा का ऐसा कठोर प्रण है, तब तो हमें आपको भेजना ही पड़ेगा।"

उसी क्षण वहाँ पर मंत्री महोदय आकर स्वयं राजा से सारी बातों का निवेदन करके उन सभी के प्रस्थान हेतु उत्तम मुहूर्त निश्चित करते हैं। महाराज यशोधर अपनी गुणवती कन्या को यथायोग्य शिक्षा देते हैं और कहते हैं-

"बेटी! तुम मनोवती को अपनी बड़ी बहन समझो। वह बुद्धि में, वय में, धर्मकार्य में और पद में तुमसे बड़ी है और पतिदेव को सर्वस्व समझो। सास, ससुर, जेठानी की सेवा करो। प्रत्यक्ष में मनोवती द्वारा प्राप्त किये गये धर्म के फल को देखकर धर्म में सदैव मन लगावो।"

अनन्तर महाराज यशोधर ने कुमार को बहुत सा द्रव्य, बहुत से हाथी, घोड़ा आदि सेना देकर विदाई समारोह किया। आप स्वयं अपने मंत्रीगण तथा नागरिक जनों के साथ सपरिवार कुमार को कुछ दूर पहुँचाने गये। गाजे-बाजे की ध्वनि से एक बार फिर शहर में महामहोत्सव दिखने लगा। सभी ने कुमार के गमन में अपने को दुःखी मानते हुए भरे हुए हृदय से विदाई दी और पुनः कभी वापस आने के लिए बार-बार प्रार्थना की।

कुमार बुद्धिसेन अपने पिता-माता, भाई-भावज और उभय भार्याओं के साथ तथा बहुत बड़ी सेना के साथ प्रस्थान करके रतनपुर के उसी बगीचे

में आकर ठहर गये कि जहाँ पहले ठहरे थे। रात्रि विश्राम करके प्रातः नित्य-क्रिया से निवृत्त होकर शहर के लोगों से यथोचित वार्तालाप करके प्रेम से उन्हें विदा करके बल्लभपुर शहर का मार्ग पकड़ा और रास्ते में जगह-जगह पड़ाव डालते हुए बल्लभपुर के निकट बगीचे में पहुँच गये।

बल्लभपुर नरेश ने जैसे ही सुना, मंत्री महोदय साथ में बुद्धिसेन को बड़ी धूमधाम से लेकर आ रहे हैं, तो शहर में घोषणा कर दी कि हमारे साथ स्वागत के लिए सारे नागरिक स्त्री-पुरुष एकत्रित हो जावें। दूसरे दिन प्रातःकाल महाराज स्वयं सभी लोगों के साथ बगीचे में पहुँचते हैं और हाथी से उतरकर पैदल चलकर कुमार बुद्धिसेन के सामने आते हैं।

बुद्धिसेन भी राजा को सन्मुख आते हुए देखकर जल्दी से उठ खड़े होकर आगे बढ़कर राजा को प्रणाम करते हैं। राजा भी उन्हें तत्क्षण ही हृदय से लगा लेते हैं पुनः हेमदत्त सेठ से मिलते ही उनके नेत्र सजल हो जाते हैं—

"सेठ हेमदत्त! मेरे निमित्त से तुमने कितने संकटों का सामना किया है। हाय! कैसे-कैसे दुःख झेलकर तुमने अपने पुत्र को वापस पाया है। अब मेरे अपराध को क्षमा कर दो। कुमार बुद्धिसेन! मेरे निमित्त से ही तो तुम्हें देश निर्वासन का कठोर दुःख भोगना पड़ा। अब तुम भी मेरे अपराध को क्षमा करो।"

"महाराज! आपका इसमें क्या दोष है? मेरे ही संचित कर्मों का फल मैंने भोगा है।"

सेठ हेमदत्त बोलते हैं—

"महाराज! मैंने उस समय असत्य भाषण करके एक अपराध किया फिर निरपराधी पुत्र को निकाल कर दूसरा अपराध किया। अनंतर तृतीय

अपराध में बहू की प्रतिज्ञा की निंदा करके जो पाप कमाया, वह सब एक साथ उदय में आ गया।.....अस्तु अब हम सब इस बहू की प्रतिज्ञा के प्रसाद से ही पुनः इतने ऊँचे उन्नति शैल पर चढ़कर आपसे पहले जैसी स्थिति तो.....क्या? उससे अधिक उत्तम स्थिति में मिल रहे हैं।"

राजा मरुदत्त मनोवती को देखकर उसे पुत्रीवत् हृदय से लगाकर माथे पर हाथ फेरकर कहते हैं—

"बेटी! तू धन्य है! तेरा जीवन धन्य है! और तेरी धर्म की श्रद्धा धन्य है! तूने साक्षात् धर्म का चमत्कार, धर्म का अचिन्त्य प्रभाव प्रत्यक्ष में ही सबको दिखा दिया है।"

इस तरह सबसे मिलकर महाराज सबको बड़े उत्सव के साथ बल्लभपुर में प्रवेश कराते हैं। पहले अपने राजभवन में ले जाकर विशेष सत्कार कर भोजन आदि कराते हैं। वस्त्रालंकार भेंट करते हैं। अनंतर राजा मरुदत्त चौथाई राज्य प्रमाण देश कुमार को भेंट रूप में देकर राजा बना देते हैं। सेठ हेमदत्त की गिरवी रखी हुई हवेली को मंत्री ने पहले से ही खाली कराकर उसे खूब सजाकर सुन्दर बनाई थी। दूसरे दिन कुमार बुद्धिसेन सपरिवार पहले जिनमंदिर में जाकर जिनदर्शन- पूजन आदि करके पुनः राजा की आज्ञा से अपने महल में प्रवेश करते हैं। आगे-आगे सेठ हेमदत्त हैं, पीछे से सेठानी हेमश्री अपने सभी सातों पुत्र और आठों बहुओं को तथा अनेकों पौत्र सभी पौत्रियों को साथ लिये हुए प्रवेश करती हैं। घर में सर्वत्र मंगलमय वातावरण है। जिधर देखो, उधर रत्नों की जगमगाहट, मोतियों की मालाएं और सुन्दर-सुन्दर तोरण बंधे हुए हैं। सर्वत्र राजमहल की शोभा छिटक रही है।

बहू मनोवती के घर में पैर रखते ही जो महल के बगीचे सूखे थे,

हरे-भरे हो गये हैं। सूखे सरोवरों में ऊपर तक पानी लहरें ले रहा है, कमल खिल रहे हैं और हंस मिथुन क्रीड़ा कर रहे हैं। शहर के नर-नारी चारों तरफ से आ रहे हैं। सबसे मिलकर सभी लोग अपार हर्ष का अनुभव कर रहे है। सेठ हेमदत्त का मन-मयूर खुशी से नाच रहा है और सेठानी हेमश्री अपने भाग्य की सराहना कर रही हैं। धनदत्त आदि सभी पुत्र, धनश्री आदि सभी पुत्र-वधुएं कुमार बुद्धिसेन और मनोवती के धर्म की श्रद्धा को, उसके फल को देखते हुए हर्ष विभोर हो रहे हैं।

स्थानीय नर-नारी आपस में चर्चा कर रहे हैं —

"भाई! देखो तो सही, इस मनोवती ने पूर्व जन्म में कितना पुण्य किया होगा! जो कि एक वर्ष में ही इतना वैभव, इतना सुयश प्राप्त कर लिया।"

"नहीं बंधु! आपको मालूम नहीं है इसने इस जन्म में ही अपनी दर्शन प्रतिज्ञा के बल से इतना वैभव और सुयश पाया है और फिर जिनमंदिर का निर्माण कराके अनंत पुण्य संचित करके अपने संसार की परम्परा को भी समाप्त ही कर दिया.....समझो।"

"मित्र! अभी-अभी रतनपुर में महा महोत्सव में क्या आपने महामुनि का उपदेश नहीं सुना था? वे बता रहे थे कि इसने ब्याह के बाद एक पक्ष के अन्दर ही प्रतिज्ञा के बल से देवों द्वारा उपकार और महान सुख सम्पत्ति प्राप्त कर ली.....और बंधु! इनके ससुर आदिकों ने धर्म की निंदा से छह महीने के अंदर ही असंख्य दुःख झेले हैं।"

"हाँ भाई! उस उपदेश को सुनकर तो मैं समझता हूँ कि सभी यात्रियों ने ही जिनदर्शन और जिनधर्मसंबंधी कुछ न कुछ नियम अवश्य ही ले लिया है। मैंने भी तो नियम लिया है कि प्रतिदिन श्री जी के चरण सानिध्य में श्रीफल चढ़ाकर ही भोजन करूँगा।

"बहन! वहाँ रतनपुर में तो सभी ने धर्मरत्न को ही लूट लिया है।"

"बहन? तुमने क्या नियम लिया है?"

"मैं तो प्रतिदिन मुनि को आहार दान देकर ही भोजन करूँगी और तुमने?....."

"मैंने तो प्रतिदिन उत्तम-उत्तम अंगूर, आम्र, अनार आदि फलों से पूजा करने का नियम लिया है।"

"बहन! बहुतों ने बेला, पारिजात आदि पुष्प चढ़ाने का, बहुतों ने कमल आदि पुष्पों को चढ़ाने का, बहुतों ने सुवर्ण पुष्पों के समर्पण करने का एवं बहुतों ने प्रतिदिन लवंग, इलायची आदि चढ़ाने का, बहुतों ने अपने पुण्य वैभव के अनुसार रत्न चढ़ाने का नियम किया है तथा बहुतों ने गजमोती चढ़ाने का ही नियम लिया है।"

"क्या बताऊँ बहन! किसी ने वहाँ अणुव्रत लिए, किसी ने रात्रि भोजन त्याग व्रत, किसी ने पुष्पांजलि, मुक्तावली आदि व्रत ग्रहण किये हैं। सच है, बिना नियम के यह मनुष्य जीवन व्यर्थ ही है इसलिए कुछ न कुछ नियम अवश्य लेना ही चाहिए।"

"और फिर जब प्रत्यक्ष में प्रतिज्ञा का फल अतिशय रूप से दृष्टिगोचर हो रहा है, तब तो दृढ़ श्रद्धानपूर्वक जिनदर्शन की प्रतिज्ञा लेकर अपना संसार स्वल्प कर लेना ही चाहिए।"

"हाँ हाँ, बहन! यह जिनदर्शन ही तो एक दिन अपनी आत्मा का दर्शन कराकर अपने अन्दर ही परमानन्दमय परमात्मा को प्रकट कराने वाला है.....।"

मातृभक्ति

रचयित्री–बाल ब्र.कु. माधुरी शास्त्री[१]

यह भारत आज नहीं युग से, नारी से रहा न खाली है।
नारी के ही कारण इसकी, गौरव गरिमा बलशाली है।।
जहाँ ब्राह्मी और सुन्दरी की, माता यशस्वती–सुनन्दा है।
वहाँ मोहिनी माता ने पाया, मैना सा पूनम चन्दा है।।१।।

संतान मात की गोदी में, पलकर शैशव को प्राप्त करे।
विधि का विधान देखो यह भी, माता खुद उन्हें प्रणाम करे।।
इन अजब निराली बातों का, साक्षात दर्श करवाती हूँ।
माँ रत्नमती जी का किंचित्, मैं जीवन चरित सुनाती हूँ।।२।।

तीर्थंकर अभिषव से पवित्र, साकेतपुरी इक नगरी है।
कण–कण पवित्र इस स्थल का, नहिं इस सम दूजी नगरी है।।
श्री भरतराज का एकछत्र, शासन फैला जब से जग में।
इस वसुन्धरा का भारत भू, यह नाम पड़ा तब से सच में।।३।।

षट्खंड वसुधा को जीत प्रभू ने, चक्रवर्ति पद प्राप्त किया।
पुनरपि भुजबलि श्री बाहुबली पर, चक्ररत्न को चला दिया।।
सब राज्य विभव को त्याग बाहुबलि, गिरि कैलाश पधारे थे।
तब भरत अयोध्यापति बनकर, कुण्ठित मन राज्य संभारे थे।।४।।

१. वर्तमान आर्यिका चन्दनामती माताजी द्वारा सन् १९८० में लिखित।

इस नगरि अयोध्या के मधि में, सीतापुर जिला निराला है।
महमूदाबाद ग्राम जहाँ पर, नभ से टूटा इक तारा है।।
भक्तों की भीड़ लगी रहती, मंदिर मेले रथयात्रा पर।
घंटे बाजों की ध्वनि प्रभु का, संदेश सुनाती है घर–घर।।५।।

मंदिर के ही निकटस्थ भवन, श्रेष्ठी सुखपाल रहा करते।
दाम्पत्य सुखों से पूर्ण तथा, श्रावक षट्कर्म सदा करते।।
द्वय पुत्र पुत्रिद्वय के संग में, परिवारिक आनंद बाँटा था।
निज के धार्मिक संस्कारों को, सब सन्तानों में डाला था।।६।।

राजदुलारी मोहिनी इन दो, कन्या रत्नों को पाकर के।
पितुमात के हर्ष की वृद्धि हुई, इनका लालन–पालन करके।।
महिपाल दास भगवान दास, इक महल के दो स्तंभ बने।
इनसे शोभित सुखपाल दास, होते मन में संतुष्ट घने।।७।।

राजदुलारी ने बाल्य अवस्था से, तरुणावस्था को प्राप्त किया।
व्यवहारिक रीतिरिवाजों ने, माता से उसको पृथक् किया।।
वह सास–ससुर के घर पहुँची, तब नवजीवन प्रारंभ किया।
वैवाहिक प्रथा पुरानी है, उसको इनने आरंभ किया।।८।।

मोहिनी सभी को मोह रही, दोनों भाई संग खेल रही।
सब लाड़प्यार में पली मोहिनी, माँ के मन को मोह रही।।
पर कोई पुत्री माता के संग, कितने दिन रह सकती है।
पुत्री पर का धन है निश्चित, वह तो पर की ही शक्ति है।।९।।

मोहिनी किशोरा को लख कर, माँ–बाप सोचते हैं मन में।
इस योग्य गुणों वाला वर हो, जिससे जोड़ी वरदान बने।।

वर की तलाश तो दूर रही, वर पक्ष तरफ से माँग हुई।
सुन्दर सुयोग्य वर को लखकर, मन की सब पूरी आश हुई।।१०।।

बाराबंकी है जिला जहाँ, इक ग्राम टिकैतनगर शोभे।
जिनमंदिर के ही निकटस्थ भवन में, धनकुमार श्रेष्ठी रहते।।
सब पुत्र-पुत्रियों के संग में, आनन्द मग्न हो रमण करें।
इन सबमें छोटेलाल पुत्र के, संग मोहिनि संबंध करें।।११।।

यह बात जची सबके दिल में, बस शीघ्र कार्य प्रारंभ हुआ।
वर-वधू की राशि मिला करके, शुभ लग्न में यह संबंध हुआ।।
मोहिनी उस घर को छोड़ चली, जिसको निज मान रही अब तक।
बेटी जब तक अविवाहित है, घर से संबंध रहे तब तक।।१२।।

फिर तो पति के ही चरणों में, उसका जीवन न्यौछावर है।
पति के ही घर को अपना कर, उसमें निज पर का भान करे।।
यह है रिश्ता नाता जग का, कब से चलता ही आया है।
इस बिन संसार और मुक्ति का, मार्ग नहीं बन पाया है।।१३।।

दो वर्ष अनंतर मोहिनि ने, इक कन्या रत्न प्रदान किया।
जो मैना से बन ज्ञानमती, सारे जग का कल्याण किया।।
जन-जन को ज्ञानदान देकर, निज सम्यग्ज्ञान प्रचार करें।
जिनकी वाणी रस अमृत से, नर निर्झर अमृत प्राप्त करें।।१४।।

मैना के दीक्षित जीवन से, इनके मन में वैराग्य हुआ।
सामान्य संयमित जीवन कर, दो प्रतिमा के व्रत ग्रहण किया।।
निज व्रत को पालन करके भी, पति आज्ञा में अग्रणी रहीं।
कर्तव्यपरायण हो करके, सब पुत्रपुत्रि को पाल रहीं।।१५।।

कुछ काल अनंतर ही इनके, घर में इक घटना-चक्र घटा।
इक पुत्री मनोवती ने भी, मैना के पथ पर कदम रखा।।
सब भाई-बंधु और मातपिता, समझा-समझा कर हार गए।
उस अडिग प्रतिज्ञा के समक्ष, सबने ही मस्तक झुका दिए।।१६।।

माता मोहिनी के ऊपर यह, क्या वज्राघात प्रहार हुआ।
वे समझ नहीं पा रहीं कि यह, किस कालचक्र का वार हुआ।।
कुछ क्षण विचार करतीं वे भी, संसार पंक से निकलूँ मैं।
पर पुनः नारिजीवन के कर्तव्यों, का ध्यान करें मन में।।१७।।

वह मनोवती बन अभयमती, जग अभयदान का पात्र बना।
गुरु ज्ञानमती से ज्ञान ग्रहण कर, जीवन का कल्याण किया।।
मोहिनी गृहस्थ में रहकर के, षट्कर्मों का पालन करतीं।
नित धर्मनीति से चार पुत्र, नव पुत्रियों का लालन करतीं।।१८।।

ज्यों समय बीतता जाता है, पितुमात सभी घबड़ाते हैं।
कोई पुत्र या पुत्री न जाए चला, बस यही भावना भाते हैं।।
पर क्या कोई नर है जग में, विधि का विधान जो टाल सके।
अनहोनी भी होके रहती, नहिं होनहार कोई टाल सके।।१९।।

जैसे तैसे कर सहन किया, तब पिता ने इन आघातों को।
पच्चीस दिसंबर सन् उनहत्तर, चले स्वर्ग तज प्राणों को।।
सब नरनारी के बीच समाधी-मरण हुआ बहुशांती से।
जिनमुनि का आशीर्वाद मिला, नवकार मंत्र पढ़ते-पढ़ते।।२०।।

उस दिन से माँ के जीवन में, 'माधुरी' आ गया परिवर्तन।
इस जग में अपना कौन बचा, जिसमें करती मैं अपनापन।।

पर पुत्रों की विक्षिप्त दशा को, देख हृदय कुछ द्रवित हुआ।
कुछ दिन गृह आश्रम में रह, कामिनी पुत्रि का ब्याह किया।।२१।।
माधुरी और त्रिशला इन दो, पुत्री का और सहारा था।
अविवाहित बेटा था रविन्द्र, जो एक मात्र गृहतारा था।।
भादों दशलक्षण महापर्व, जो एक वर्ष में आता है।
अजमेर महानगरी में नर-नारी का लग रहा तांता है।।२२।।
आचार्य धर्मसागर जी का, चउविध संघ वहाँ विराज रहा।
श्री ज्ञानमती माताजी के, उपदेशामृत का ठाठ वहाँ।।
कैलाशपुत्र निज परिकर सह, माँ को संग लेकर निकल पड़े।
मुनिसंघ दर्श के इच्छुक हो, आहारदान के भाव लिये।।२३।।
दश दिवस वहाँ पर रह करके, चउविध दानों का लाभ लिया।
संघ साधू की परिचर्या कर, उपदेशामृत का पान किया।।
इक दिन कैलाशचन्द्र बोले, माँ अब घर को चलना चाहिए।
गृहकाज और व्यापार सभी की, देखभाल करना चाहिए।।२४।।
माँ बोलीं तुम सब घर जाओ, थोड़े दिन मुझको रहने दो।
इन सबकी त्याग-तपस्या से, मुझको भी शिक्षा लेने दो।।
घबड़ाओ मत बेटा मैं तो, कुछ ही दिन में घर आऊँगी।
मेरा शारीरिक स्वास्थ कहाँ, जो दीक्षा मैं ले पाऊँगी।।२५।।
मैं तो केवल इक बाला की, प्रतिभा शक्ति को देखूँगी।
इस अल्प आयु में केशलोंच, कैसे करती यह देखूँगी।।
माँ की इन बातों को सुनकर, बेटे को कुछ तो धैर्य बंधा।
बोले, माँ मैं कुछ ही दिन में, छोटे भाई को भेजूँगा।।२६।।

दोनों छोटी बहनों को ले, कैलाश चल दिए थे घर को।
लेकिन इक संशय बार-बार, होता रहता उनके मन को।।
माँ कभी न सोचे यह मन में, मेरा इस जग में कौन रहा।
मैं भी माताजी बन जाऊँ, यह सांसारिक संबंध रहा।।२७।।
कुछ दिवस बीतते ही देखो, यह कैसा हुआ धमाका था।
माँ मोहिनी भी दीक्षा लेंगी, यह आया घर संदेशा था।।
इस समाचार को सुन करके, मानो सबको मूर्च्छा आई।
यह अनहोनी कैसे होगी, यह कैसी अशुभ घड़ी आई।।२८।।
कैलाश-प्रकाश-सुभाष सभी, तत्क्षण ही घर से निकल पड़े।
माँ की दीक्षा रुकवाने को, आचार्यश्री के चरण पड़े।।
क्या ऐसी भी दीक्षा होती, जिसमें न किसी की सम्मति हो।
किसकी हस्ती है जो मेरी, माँ को दीक्षा दे सकती हो।।२९।।
आचार्यश्री पड़ गए धर्मसंकट में सोच करें मन में।
इक ओर मोहिनी खड़ी सुदृढ़, हाथों में श्रीफल ले करके।।
चतुराहारों का त्याग किया, जब तक दीक्षा नहिं पाऊँगी।
सांसारिक संबंध पुत्र-बहू, मैं वापस घर नहिं जाऊँगी।।३०।।
सब पुत्र-पुत्रियाँ बिलख रहीं, माँ तुमने क्या सोचा मन में।
पितु का साया तो उठ ही गया, माँ भी निर्मम हो गयी हमसे।।
कुछ दिन तो चलो रहो घर में, हम सबको धैर्य बंधाओ तुम।
माँ-बाप बिना असहाय बालकों, को कुछ तो समझाओ तुम।।३१।।
बेटियाँ सभी रोतीं कहतीं, माँ पीहर कैसे जाएंगे।
माँ बिन क्या घर अच्छा लगता, अरमान सभी खो जाएंगे।।

दामाद सभी रो रहे खड़े, माँ ऐसा अभी न सोचो तुम।
छोटे भाई भगवानदास, रो रहे बहन कुछ बोलो तुम।।३२।।
सब कुटुंबियों का रुदन देख, अजमेर भी विह्वल हो उठता।
जन-जन की आँखों में अश्रू, यह दृश्य परम कारुणिक रहा।।
इक बार सभी के होठों से, यह शब्द अवश्य निकल जाता।
ऐसी दीक्षा मत होने दो, इनको दे दो इनकी माता।।३३।।
लेकिन मोहिनी प्रतिज्ञा का, पालन करके दिखलाएगी।
मोहिनी आज निर्मोहिनी बन, गृहपिंजड़े से उड़ जाएगी।।
माँ को देखा जब निराहार, तो सबका ही दिल कांप गया।
लाखों प्रयत्न करके हारे, तब माँ के चरण प्रणाम किया।।३४।।
माँ जैसी मरजी हो कर लो, आहार चलो तुम ग्रहण करो।
हम निराहार नहिं देख सकें, तुम क्यों शरीर कमजोर करो।।
देखो सुभाष बेहोश पड़ा, इस पर तो थोड़ा तरस करो।
सब पुत्र-पुत्रियों को खुद ही, क्यों दुख सागर में मग्न करो।।३५।।
लेकिन माँ जैसे पत्थर की, नहिं एक अश्रु है आँखों में।
वैरागिन बन दीक्षा लेऊँ, इक यही आश है बस मन में।।
मगशिर वदी तीज तभी आई, यह आशा पूरी करने को।
मोहिनी बन गईं "रत्नमती", तब मोक्षलक्ष्मी वरने को।।३६।।
कर रहीं ज्ञानमती केशलोंच, अपने सम उन्हें बनाने को।
लाखों जन समुदायों के मधि, जैनी चर्या समझाने को।।
परिजन-पुरजन सब खड़े हुए, आँखों से अश्रू बहा रहे।
नहिं बोल सके लेकिन कुछ भी, बस मौन सम्मती दिला रहे।।३७।।

आचार्यश्री ने सोच-समझकर, एक बार पूछा फिर से।
मोहिनी तुम्हें तो मोह नहीं, किसी पुत्र-मित्र संबंधी से।।
तब उठीं मोहिनी हिम्मत से, चउसंघ की साक्षी ले करके।
सब जीवों से कर क्षमाभाव, मन में समता धारण करके।।३८।।
फिर निश्चल होकर बैठ गईं, गुरुवर मुझको दीक्षा दीजे।
श्रीवीतराग के चरणों में, हो मति ऐसी शिक्षा दीजे।।
आर्यिका व्रतों को धारण कर, स्त्रीलिंग से मुक्ती पाऊँ।
बनकर निर्ग्रंथ तपश्चर्या कर, निज में ही मैं रम जाऊँ।।३९।।
मुनिसंघ ने भी विमर्श करके, तब "रत्नमती" यह नाम दिया।
रत्नों की खान कहाती हैं, यह रत्नप्रसूता मात महा।।
चल दिए कुटुंबी सभी दुखित, मन माँ का आशीर्वाद लिए।
अब मात बन गई जगतमात, यह कह सब गृह प्रस्थान किए।।४०।।
माधुरी यह दिल में सोच रही, मैं ही अब क्यों घर में जाऊँ।
आजीवन ब्रह्मचर्य लेकर, माँ की छाया में रह जाऊँ।।
नहिं रोक सके कोई बंधू, उसकी भी अटल प्रतिज्ञा को।
सब मान रहे इसको कोई, भव-भव में करी तपस्या हो।।४१।।
यह दृश्य देख करके रवीन्द्र भी, सोचे तत्त्वव्यवस्था को।
स्त्रीपुत्रादि नहीं कोई, संग जाते जीव अकेला हो।।
कुछ दिन घर जाकर भाई के, संग रह सबको संतुष्ट किया।
दो वर्षों के पश्चात् धर्मसागराचार्य का दर्श किया।।४२।।
श्रीफल ले करके हाथों में, जा गुरुवर चरण प्रणाम किया।
भवबंधन से मुक्ती हेतू, शुभ ब्रह्मचर्य व्रत प्राप्त किया।।

इस समाचार के मिलने पर, घर में भी हाहाकार हुआ।
भाई-भाभी सब रोते थे, मानो क्या वज्राघात हुआ।।४३।।
यह दैव बड़ा निर्दयी बली, कैसा यह रंग दिखाता है।
छोटे-छोटे भाई बहनों को, हम सबसे छुड़वाता है।।
इस तरह सोचते सब भाई, सांसारिक भोग न रुचते हैं।
फिर भी गृहस्थ में रह करके, पूजादानादिक करते हैं।।४४।।
श्री ज्ञानमती माता सदृश ही, रत्नमती आर्यिका बनीं।
मातापुत्री संबंध नहीं, रह गया धर्मनीति समझीं।।
कुछ दिन आचार्य संघ रह करके, धर्मसाधना करती थीं।
गुरु का आशीर्वाद पा करके, निज को धन्य समझती थीं।।४५।।
आर्यिकासंघ मंगल विहार, दिल्ली की ओर करा जब ही।
माँ रत्नमती भी इस ही संघ में, ज्ञानमती के संग रहीं।।
दिल्ली महानगरी इन्द्रप्रस्थ, कहलाती है इस भूतल पर।
पच्चीस सौवें निर्वाणोत्सव की, धूम मच रही इस थल पर।।४६।।
दिल्ली वासी के भाग्य जगे, माँ ज्ञानमती दर्शन करके।
निर्वाणोत्सव के अवसर पर, ऐसी विदुषी को पा करके।।
फिर क्या था इस सुन्दर सुवर्ण, अवसर पर चार चाँद लगते।
भारत के कोने-कोने से, कितने ही संत तभी चमके।।४७।।
श्री धर्मसागराचार्य देशभूषण आचार्य पधारे थे।
मुनि विद्यानंद माँ ज्ञानमती, ये साधूजगत सितारे थे।।
इन गुरुओं के दर्शन कर करके, रत्नमती पुलकित होतीं।
कुछ दिवस बाद माँ ज्ञानमती संग, हस्तिनागपुर चल देतीं।।४८।।

जहाँ जम्बूद्वीप विशाल तीर्थ, हो रहा जगत में न्यारा है।
इसके मधि मेरु सुदर्शन गिरि, जिनवर अभिषव से प्यारा है।।
मेरू के सिद्ध जिनालय के, दर्शन-वंदन करती रहतीं।
शास्त्रिक पौराणिक बातों का, साक्षात् दर्श करती रहतीं।।४९।।
ये रत्नमती माताजी के, जीवन की सब स्मृतियाँ हैं।
माँ ज्ञानमती और अभयमती, सब इनकी ही तो कृतियाँ हैं।।
गर बाँस नहीं होते तो नहिं, बज सकती थी बांसुरी कभी।
जग उऋण नहीं हो सकता है, उपकारों से "माधुरी" कभी।।५०।।
इस जग में सूरज और चंदा का, वास प्रकाश रहे जब तक।
माता की दिगदिगन्तव्यापी, चहुँ ओर कीर्ति फैले तब तक।।
माँ रत्नमती के चरणों में, सुमनांजलि अर्पित करती हूँ।
मेरा प्रयास यह और फले, सर्वस्व समर्पण करती हूँ।।५१।।